॥ श्रीस्वामिनारायणो विजयते ॥

सत्संग शिक्षण श्रेणी : पाठ्यपुस्तक क्रमांक : 16

भगवान स्वामिनारायण प्रबोधित श्री अक्षरपुरुषोत्तम उपासना

लेखक
किशोर महीपतराम दवे

प्रकाशक
स्वामिनारायण अक्षरपीठ
शाहीबाग, अहमदाबाद - 380 004.

SHRI AKSHAR PURUSHOTTAM UPASANA (Hindi Edition)
(The Philosophy of Akshar Purushottam as propounded by Bhagwan Swaminarayan)

By Kishore M. Dave

A textbook for examination prescibed under the curriculum set by Bochasanwasi Shri Akshar Purushottam Swaminarayan Sanstha.

Inspirer: HDH Pramukh Swami Maharaj

Presented by:

Bochasanwasi Shri Akshar Purushottam Swaminarayan Sanstha
'Swaminarayan Akshardham', N.H. 24, Akshardham Setu,
Yamuna Kinara, New Delhi - 110 092. India.

Publishers:

SWAMINARAYAN AKSHARPITH
Shahibaug, Amdavad - 380 004. India.

2nd Edition: March 2007 **Copies :** 3,000 (Total 4,000)

Warning:

Copyright: ©Swaminarayan Aksharpith

This book is published by Swaminarayan Aksharpith. Material from this book cannot be used without due acknowledgement to Swaminarayan Aksharpith, Shahibaug, Amdavad. For any reprints the written permission of the publishers is necessary.

IBSN: 81-7526-225-7

रजूकर्ता : बोचासणवासी श्री अक्षरपुरुषोत्तम स्वामिनारायण संस्था (बी.ए.पी.एस.)
'स्वामिनारायण अक्षरधाम', नेशनल हाईवे 24, अक्षरधाम सेतु,
यमुना किनारा, नई दिल्ली - 110 092.

प्रेरणामूर्ति : प्रकट ब्रह्मस्वरूप प्रमुखस्वामी महाराज

सूचना : सर्वाधिकार सुरक्षित : © स्वामिनारायण अक्षरपीठ

इस पुस्तक के अंश किसी भी स्वरूप में प्रकाशित करने के लिए प्रकाशक की लिखित सम्मति अनिवार्य है।

द्वितीय संस्करण : मार्च, 2007

प्रति : 3,000 (कुल प्रति 4,000)

मूल्य : रु. 30.00

मुद्रक एवं प्रकाशक :

स्वामिनारायण अक्षरपीठ

शाहीबाग, अहमदाबाद-380 004.

प्रास्ताविक

भगवान श्री स्वामिनारायण प्रबोधित शुद्ध उपासना की यह पुस्तक पाठकों के हाथों में रखते हुए हम अत्यंत हर्षित हैं। उपासना के गहन और सूक्ष्म ज्ञान को सत्संगियों के समक्ष सरल भाषा में रखने का यह नम्र प्रयास है। तीन वर्षीय पाठ्यक्रम में सत्संग का बुनियादी ज्ञान प्राप्त करके उपासना समझने के लिए योग्य भूमिका रचने के पश्चात् इस पुस्तक को समझने में कोई कठिनाई नहीं होगी। इसके बावजूद उपासना का ज्ञान बहुत गूढ़ है तथा उपासना के बारे में अनेक मत प्रचलित हैं। अत: इस पुस्तक में भगवान स्वामिनारायण के वचनामृत, अक्षरब्रह्म गुणातीतानंद स्वामी का उपदेशामृत, संप्रदाय के नंद परमहंसों के कीर्तन तथा संप्रदाय का इतिहास और ब्रह्मस्वरूप संतों के श्रीमुख से सुने हुए ऐतिहासिक प्रसंगों के अनुभवों पर आधारित सिद्धांतों को सरल रूप में समझाने का प्रयास किया गया है।

ब्रह्मस्वरूप शास्त्रीजी महाराज द्वारा प्रवर्तित अक्षरपुरुषोत्तम उपासना स्वामिनारायणीय संप्रदाय का शुद्ध उपासना ज्ञान है तथा शुद्ध उपासना-रीति है। यह ज्ञान इस पुस्तक के गहन अध्ययन के बाद सुदृढ़ होगा।

इस पुस्तक के लेखन में प्रकट ब्रह्मस्वरूप प्रमुखस्वामी महाराज ने प्रारंभ से ही रुचि लेकर उपयोगी सूचनाएँ और प्रेरणा दी हैं। इसके उपरांत विद्वान संतों ने संशोधन कर पुस्तक का योग्यतम स्वरूप निर्धारित किया है। पूज्य ईश्वरचरण स्वामी के सहयोग और दिशा-निर्देश के बिना यह संभव न था। इस पुस्तक के निर्माण में पू. हर्षदभाई दवे से शुद्ध उपासना का ज्ञान प्राप्त करने का सुयोग प्राप्त हुआ। प्रो. रमेशभाई दवे ने भी इस पुस्तक के लिए उपयोगी मार्गदर्शन दिया। हम इन सभी के हार्दिक आभारी हैं।

सत्संग शिक्षण परीक्षा के पाठ्यक्रम के रूप में इस पुस्तक की रचना की गई है। चतुर्थ खण्ड - 'सत्संग प्रवीण' परीक्षा के लिए यह पुस्तक पाठकों के लिए उपयोगी रहेगी।

भगवान स्वामिनारायण, गुणातीतानन्द स्वामी तथा प्रकट गुरुहरि प्रमुखस्वामी महाराज को प्रसन्न करने के लिए सत्संगी, बालक, युवक तथा जिज्ञासु पाठ्यक्रम के अनुसार अच्छी तरह तैयारी करके सत्संग परीक्षाओं में उच्च प्रमाणपत्र प्राप्त करें, यही प्रार्थना।

- लेखक

अनुक्रमणिका

1. उपासना 1

(1) उपासना का महत्त्व 1

(2) उपासना किसे कहते हैं ? 3

2. कर्ता 5

(1) भगवान कर्ता कैसे हैं ? 5

(2) भगवान स्वामिनारायण सर्वकर्ता-हर्ता हैं 6

(3) भगवान को सर्वकर्ता-हर्ता जानने की आवश्यकता 7

3. साकार 10

(1) साकार स्वरूप में रुचि 10

(2) भगवान को निराकार समझने से हानि 12

(3) भगवान निराकार है इस विचार का उद्‌भव कैसे हुआ ? 13

(4) भगवान साकार कैसे हैं ? 16

(5) जो मूर्तिमान है वह व्यापक कैसे हैं ? 18

(6) भगवान अक्षरधाम में और पृथ्वी के उपर साकार हैं 19

(7) दिव्यभाव 21

(8) दिव्यभाव समझने की आवश्यकता 23

(9) भगवान में मनुष्यभाव देखने से हानियाँ 26

(10) सर्वज्ञता 30

4. सर्वोपरि 32

(1) 'भगवान सर्वोपरि हैं' यह निष्ठा आवश्यक है 32

(2) सबसे परे अक्षरधाम और अक्षरधामाधिपति सर्वोपरि श्रीहरि 33

(3) भगवान स्वामिनारायण सर्वोपरि 37

- स्वकथन के आधार पर 37
- गुणातीतानंद स्वामी के अनुसार 38
- अन्य परमहंसों के अनुसार 42

(4) उत्पत्ति सर्ग 45

(5) परब्रह्म पुरुषोत्तम नारायण - एक एवं अद्वितीय 48

(6) प्रचलित प्रसंग 49
- भगवान स्वामिनारायण द्वारा प्रसंगोपात्त समझाई गई अपनी सर्वोपरिता 49
- अक्षरब्रह्म गुणातीतानंद स्वामी के शब्दों में भगवान स्वामिनारायण की सर्वोपरिता 56

(7) कुछ प्रश्नोत्तर 58
(8) अनन्य निष्ठा सहित सभी अवतारों का आदर..... 64

5. प्रकट 66

(1) प्रकट का अर्थ क्या है? किस रीति से प्रकट हैं? 66
(2) प्रकट की पहचान ही ज्ञान 69
(3) प्रकट भक्ति की महिमा..... 71
(4) प्रकट भक्ति - शांति का पथ..... 73
(5) प्रकट भगवान या भगवान के संत द्वारा मोक्ष 74
(6) प्रकट को जाने बिना कसर 79
(7) भगवान स्वामिनारायण अक्षरधाम में सिधारने के बाद आज किस रूप में प्रकट हैं ? 82
(8) भगवान केवल एक ही प्रकट स्वरूप होता है 85
(9) गुणातीत संत के लक्षण 88
(10) गुणातीत संत की महिमा..... 91
- श्रीहरि के शब्दों में 91
- अक्षरब्रह्म गुणातीतानंद स्वामी के शब्दों में 94
- परमहंसों के पदों में..... 95
- प्रसिद्ध संत कवियों के पदों में 98
- विभिन्न शास्त्रों में..... 99
- गुणातीत संत : भगवान का प्रकट स्वरूप एवं उनके सेवक 100

6. अक्षरब्रह्म 102

(1) अक्षररूप होकर पुरुषोत्तम की स्वामी-सेवक भाव से उपासना 103

(2) ब्रह्मरूप होने की आवश्यकता 105
- पुरुषोत्तम की भक्ति का अधिकारी बनने के लिए 105
- निर्विघ्न भक्ति हेतु 105
- आत्यंतिक मुक्ति हेतु 106

(3) मोक्ष मार्ग में अक्षरब्रह्म की आवश्यकता 107
- ब्रह्मरूप होने के लिए 107
- परब्रह्म को तत्त्व सहित जानने के लिए 108

(4) अक्षरब्रह्म की अनंत महिमा 109

(5) अक्षरब्रह्म का स्वरूप 111

(6) अक्षर के दो स्वरूप 112

(7) अक्षरब्रह्म 112
- सच्चिदानंद चिदाकाश तेजरूप 112
- धामरूप में 112
- साकार, मूर्तिमान, सदा दिव्यविग्रह 114
- मनुष्य देहधारी 115

(8) अक्षरब्रह्म - एक और अद्वितीय 115

(9) अक्षर और पुरुषोत्तम का परस्पर सम्बंध 116

(10) ब्रह्म को परब्रह्म लीन करते हैं, इसका क्या अर्थ है ? ... 118

(11) अक्षर और पुरुषोत्तम के बीच समान गुणधर्म 119

(12) अक्षर रूप होकर पुरुषोत्तम की उपासना 120

(13) सद्. गुणातीतानंद स्वामी मूल अक्षर क्यों हैं ? 122
- शास्त्रीय प्रमाण 123
- श्रीजीमहाराज के शब्दों में गुणातीतानंद स्वामी अक्षर हैं 125
- श्रीहरि के मुख से गुणातीतानंद स्वामी की अपूर्व महिमा 129
- गुणातीतानंद स्वामी अक्षर हैं - 'स्वामी की बातें' के अनुसार 135
- सद्गुरु गुणातीतानंद स्वामी की असाधारण महिमा - स्वमुख से 135

- सद्. गुणातीतानंद स्वामी अक्षर हैं –
  गोपालानंद स्वामी के शब्दों में 137
- गुणातीतानंद स्वामी की अद्वितीय महिमा –
  सद्. गोपालानंद स्वामी के कथनानुसार 139
- गुणातीतानंद स्वामी अक्षर हैं –
  परमहंसों के शब्दों में 141
- स्वामी का असाधारण महिमा –
  परमहंसों के शब्दों में 142
- 'गुणातीतानंद स्वामी अक्षर हैं' –
  अन्य प्रमाण 145
- 'स्वामी अक्षर हैं' उनके जीवन और
  कार्य के आधार पर 148

उपसंहार 152

- उपासना में क्या समझना चाहिए 152
- उपासना में क्या नहीं समझना चाहिए ? 154

1 उपासना

परमात्मा किसी न किसी शुभ प्रयोजन के साथ धरती पर अवतरित होते हैं। भगवान स्वामिनारायण[1] ने अपने प्राकट्य के छः मुख्य प्रयोजन बताए हैं। इन प्रयोजनों में से एक है, जीवमात्र का आत्यंतिक कल्याण करना। इस प्रयोजन की सिद्धि के लिए उन्होंने जिस साधना पद्धतियों का निर्देश किया है, उनमें सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है : उपासना। उपासना का प्राथमिक अर्थ है, परमात्मा के पास बैठने की पात्रता को सिद्ध करना। इस शब्द का सांप्रदायिक परिभाषा में विशद् रूप से अर्थ किया जाता है, इसी विशद् रूप की व्याख्या को इस पुस्तक में सरल रूप से प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

भगवान स्वामिनारायण ने अपने प्रवचनों के संग्रह 'वचनामृत' में उपासना के विषय में अत्यंत स्पष्टरूप से कुछ सिद्धांत व्यक्त किए हैं, साथ ही अक्षरब्रह्म गुणातीतानन्द स्वामी तथा गुरुपरंपरा के द्वारा भी इस विषय पर जो कुछ पुष्टिकारक विवरण मिला, उसका यहाँ पूर्णतः आधार लिया गया है। संप्रदाय में उपासना प्रवर्तन का सब से अधिक श्रेय जिनके चरणों में जाता है, वे महापुरुष थे ब्रह्मस्वरूप शास्त्रीजी महाराज – स्वामीश्री यज्ञपुरुषदासजी। उन्हीं के प्रचंड पुरुषार्थ, विलक्षण अन्वेषण शक्ति एवं अनुभवसिद्ध मार्गदर्शन से 'अक्षरपुरुषोत्तम उपासना' का प्रवर्तन धूमधाम से होता चला।

ब्रह्मस्वरूप श्री योगीजी महाराज, एवं प्रकट ब्रह्मस्वरूप प्रमुखस्वामी महाराज की निश्रा में यह ज्ञान संसार के पचासों देशों में फैल चुका है।

उपासना का महत्त्व

प्रत्येक मुमुक्षु अपनी वासना मिटाने, ब्रह्मभाव प्राप्त करने तथा परब्रह्म

1. भगवान स्वामिनारायण के अन्य भी नाम हैं, जो कि इस प्रकार है : श्रीहरि, सहजानंद स्वामी, श्रीजीमहाराज।

को पाने के लिए कुछ न कुछ साधना करता रहता है। जिसमें अधिकतर व्रत, तप, योग, यज्ञ, दान, सत्संग आदि साधनों से भगवान के धाम का आनंद प्राप्त होगा, यही धारणा प्रत्येक मुमुक्षु की रहती है। किन्तु भगवद्धाम का अधिकारी वही हो सकता है, जो उपासना दृढ़रूप से सिद्ध करता है। इस ध्येय की सिद्धि के लिए यही एक अनिवार्य तथा श्रेष्ठ साधन है।

श्रीहरि ने तीन वचनामृतों में इसकी अनिवार्यता का निर्देश दिया हैं। वचनामृत ग. प्र. 56 में वे कहते हैं: 'कितने ही सिद्ध, सर्वज्ञ (उत्पत्ति आदि को जाननेवाले) तथा देवता आदि होते हैं, जो अनंत प्रकार की महत्ता तथा परमपद को भगवान की उपासना के बल पर प्राप्त करते हैं, परन्तु उपासना के बिना कोई भी साधना सिद्ध नहीं होती। इसीलिए अन्य साधनों के बल का परित्याग करके एकमात्र भगवान की उपासना का बल ही रखना चाहिए।' (वच. ग. प्र. 56)

दूसरा भी एक वचनामृत है, जिसमें श्रीहरि कहते हैं, 'भगवान की मूर्ति की उपासना तथा उसका ध्यान इन दोनों के बिना आत्मा तथा ब्रह्म(परब्रह्म) को देखना बिल्कुल असंभव ही है। केवल उपासना द्वारा ही आत्मा एवं ब्रह्म के दर्शन हो सकते हैं। बिना उपासना किए आत्मा और ब्रह्म के दर्शन की इच्छा कैसी है? तो जिस प्रकार आकाश को जीभ से सौ बर्ष तक चाटा जाए, तो भी उससे कभी भी खट्टा-खारा स्वाद नहीं आता, उसी तरह **भगवान की मूर्ति की उपासना किए बिना अन्य चाहे जितने उपाय किए जाए परंतु आत्मा और ब्रह्म दृष्टिगोचर हो ही नहीं सकते।** अत: निर्बीज[2] (निरीश्वर) सांख्य तथा योग द्वारा आत्मा के दर्शन की जो बात शास्त्रों में कही गई है, वह भले ही कही हों, परन्तु हमें तो ऐसा कोई भी व्यक्ति या योगी दिखाई नहीं पड़ा तथा मेरे अनुभव में भी ऐसी वार्ता का मिलजोल नहीं दिखता। अत: वैसी वार्ता तो मिथ्या है। (वच. ग. अं. 36)

और वच. ग. प्र. 61 में कहा, 'मृत्यु का समय तो समुद्र के समान है। अत: आत्मनिष्ठा वाले या आत्मनिष्ठाहीन, दोनों को ही **भगवान के उपासनारूपी जहाज की आवश्यकता होती है।** अतएव, अंतकाल में भगवान का दृढ़ आश्रय ही काम आता है। लेकिन अन्तसमय में आत्मनिष्ठा

2. भगवान निराकार है ऐसा प्रतिपादित करते सांख्य और योग।

किसी काम नहीं आती, इसीलिए भगवान की उपासना को सुदृढ़ करके रखना।' (वच. ग. प्र. 61)

गुणातीतानंद स्वामी ने कहा है कि, 'उपासना से ही मोक्ष है। धर्म, वैराग्य और आत्मनिष्ठा से मोक्ष नहीं होता।' (5/136)

वे अन्यत्र कहते है कि, 'हमारी महत्ता उपासना से है, धर्म में से जीव लड़खड़ा सकता है, दूसरे साधन करते हुए भी लड़खडा सकता है, परन्तु उपासना दृढ़ हो तो जीव लड़खड़ाता नहीं।' (5/70)

'जिनको भगवान की उपासना का बल है, उनको यदि महाप्रलय जैसे दुःख आ जाए, उसमें भी वे ऐसा समझें कि यह देह तो नाशवंत ही है और हम आत्मा हैं - भगवान के अक्षरधाम में निवास करेंगे, ऐसा मानकर वे सुखी रहते हैं।' (1/56)

उपासना किसे कहते हैं ?

भगवान स्वामिनारायण ने तत्त्वज्ञान में पाँच भेद अनादि माने हैं : जीव, ईश्वर, माया, ब्रह्म और परब्रह्म।[3]

परब्रह्म पुरुषोत्तम नारायण, अक्षर के अधिपति सहजानन्द स्वामी हैं और गुणातीतानन्द स्वामी अक्षरब्रह्म हैं। इस अक्षरब्रह्म का मनन द्वारा संग करके ब्रह्मरूप होकर,[4] स्वामीसेवक भाव से उपासना करने का सिद्धान्त श्रीहरि ने बताया है।[5]

उपासना किसकी और किस रीति से करनी चाहिए, यह समझाते हुए श्रीहरि कहते हैं, 'रामानुज स्वामी ने जिस प्रकार क्षर-अक्षर से परे पुरुषोत्तम भगवान का निरूपण किया है, उन पुरुषोत्तम भगवान की हम उपासना करते हैं।' (वच. लो. 14)

'हम उपासना को इस प्रकार समझते है कि सब से परे एक विशाल तेजपुंज है, जो नीचे-ऊपर और चारों ओर प्रमाण-रहित तथा अनन्त है। उसी तेजपुंज के मध्य भाग में एक बड़ा सिंहासन है, उसके ऊपर दिव्यमूर्ति श्रीनारायण पुरुषोत्तम भगवान विराजमान हैं। उस सिंहासन के चारों ओर

3. वच. ग. प्र. 7 तथा ग. अं. 10
4. वच. ग. म. 31
5. वच. ग. म. 3 तथा लो. 7, 12

अनन्तकोटि मुक्त बैठे हुए उन नारायण के दर्शन करते हैं। इन मुक्तों सहित जो नारायण हैं, उन्हें हम निरन्तर देखते रहते हैं। उन भगवान में अतिशय तेज है। जब उस मुक्तसमुदाय की सभा सहित भगवान के दर्शन नहीं होते, तब हमें अत्यन्त कष्ट होता है। वह तेजपुंज तो निरन्तर दिखाई पड़ता है, तो भी उसमें (हमारी) रुचि नहीं है। भगवान की मूर्ति के दर्शन से ही अतिशय आनंद मिलता है। हमारे मतानुसार यही उपासना है।' (वच. लो. 14)

श्रीहरि ने इस वचनामृत में अपने उदाहरण से साधक के लिए उपासना की दृढ़ता के महत्त्व को स्पष्ट किया है। इससे निम्नलिखित बातें स्पष्ट होती हैं :

(1) सब से परे एक तेजपुंज है। उस तेज के मध्य पुरुषोत्तम नारायण बिराजमान हैं।

(2) पुरुषोत्तम नारायण दिव्य हैं। उनका आकार मनुष्य जैसा है, किन्तु वे स्वयं भगवान है।

(3) भगवान स्वामिनारायण की निराकार तेज:पुंज में कोई रुचि नहीं है, वे भगवान की मूर्ति के दर्शन से आनन्दित होते हैं। अर्थात् भगवान का स्वरूप सदा साकार है। श्रीहरि को साकार की निष्ठा प्रिय है।

(4) भगवान, भगवान का धाम और उनके मुक्त सनातन हैं।

(5) दिव्य सभा में मुक्तों सहित नारायण का दर्शन करना अर्थात् भक्त सहित भगवान की उपासना करना।

'वचनामृत' में श्रीहरि ने उपासना को स्पष्ट रूप से समझने पर अधिक बल दिया है, जिससे भगवान में दृढ़ निष्ठा हो सके। सच्चे उपासक को इन सिद्धांतों में अनन्य निष्ठा होनी चाहिए : (1) भगवान सर्वकर्ता हैं। (2) भगवान सदा दिव्य साकार हैं। (3) भगवान सर्वोपरि हैं। (4) वे हमेशा प्रकट रहते हैं। ऐसी निष्ठा के बिना साधक को भगवान के धाम की प्राप्ति नहीं होती। आगे के प्रकरणों में निष्ठा के इन चार अंगों पर विचार किया जाएगा।

❖ ❖ ❖

2 कर्ता

भगवान कर्ता कैसे हैं?

परब्रह्म पुरुषोत्तम एक ही सर्वकर्ता हैं। उनकी इच्छा के बिना कोई सूखा पत्ता तक नहीं हिला सकता। सर्वजीव प्राणीमात्र को अपने-अपने कर्मों के अनुसार फल देनेवाले परमात्मा परब्रह्म हैं। यद्यपि इस जगत की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय में वे तत्काल कोई भूमिका नहीं निभाते हैं, किन्तु स्वयं सब कारणों के कारण हैं।

अन्तः प्रविष्टः शास्ता जनानां सर्वात्मा ।

(तैत्तिरीयारण्यकम् - 3/11/1-12)

अर्थात् 'सब जीवों में आत्मारूप से प्रवेश करके सबका नियंत्रण करनेवाले भगवान हैं।'

भगवान जिस रीति से जीव-जगत को नियंत्रित करते हैं, उसी रीति से ईश्वर कोटि का भी नियमन करते हैं। ईश्वरों की (समष्टि के देवताओं की) क्रियाओं की देखभाल करते हैं। उनको अपनी इच्छा के अनुसार चलाते हैं। परमात्मा अपनी इच्छाशक्ति, क्रियाशक्ति और ज्ञानशक्ति से जीव को उचित प्रेरणा देते हुए प्रेरित करते हैं। इस प्रकार -

(1) परमात्मा माया को भी अपने में लीन करने का सामर्थ्य रखते हैं।

(2) वे अक्षर के आधार हैं, फिर भी उस अक्षर को अपने में लीन करने का सामर्थ्य रखते हैं, और -

(3) कर्तुं, अकर्तुं, अन्यथाकर्तुम् तीनों प्रकार की शक्तियाँ भी परमात्मा के पास ही होती हैं।

इस प्रकार उपासक परमात्मा को सर्वशक्तिमान् एवं सर्वकर्ता समझें और उनका आश्रय ग्रहण करें।

वचनामृत में श्रीहरि ने कहा है, 'यद्यपि सबके कारणरूप भगवान मनुष्य सदृश हैं, तथापि वे अपने अंग में से योगकला द्वारा, अनन्तकोटि ब्रह्मांडों को उत्पन्न करने में समर्थ हैं तथा उन्हें अपने में विलीन करने में भी समर्थ है... उसे केवल विवेकशील पुरुष ही समझता है कि 'भगवान यद्यपि मनुष्य सदृश दिखाई पड़ते हैं तथापि वे **सबके कारण, कर्ता तथा सामर्थ्यवान हैं**।' (वच. लो. 2)

'परमेश्वर भी देश, काल, कर्म और माया की सत्ता को जितना चलने देते हैं, उतनी हद तक ही उनकी गतिविधि रहती है। किन्तु परमेश्वर की इच्छा के प्रतिकूल किसी का भी आदेश लेशमात्र भी नहीं चल पाता। इसलिए, सर्वकर्ता तो एक परमेश्वर ही हैं।' (वच. ग. म. 21)

भगवान स्वामिनारायण सर्वकर्ता-हर्ता हैं

श्रीहरि स्वयं परब्रह्म पुरुषोत्तम नारायण हैं, वे ही सर्व कर्ताहर्ता हैं। यह बात उन्होंने स्वयं अनेक वचनामृतों में स्पष्टरूप से कही है, तथा सम्प्रदाय के अन्य ग्रन्थों में भी यही बात कही गई है। जैसे श्रीहरि ने इस प्रकार के शब्द कहे हैं : 'वे (श्रीजी महाराज) ही प्रत्यक्ष रूप से दृष्टिगोचर होते हैं', 'प्रकट प्रमाण,' 'आप सबके सामने नयनगोचर' 'आपके इष्टदेव,' 'भगवान जो आपकी भक्ति स्वीकार करते हैं,' 'भगवान जो प्रकट हैं' 'आपके सामने हैं,' आदि अवतरणों से इस बात को हम भलीभाँति समझ सकते हैं।

'भगवान सदैव साकार ही हैं तथा अनेक ब्रह्मांडों की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय के कर्ता हैं। वे सर्वदा अपने अक्षरधाम में विराजमान रहते हैं तथा राजाधिराज हैं। वे ही प्रत्यक्ष रूप से दृष्टिगोचर होते हैं।' (वच. ग. अं. 35)

'समस्त ब्रह्मांडों की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय का कर्ता भी मैं ही हूँ तथा असंख्य ब्रह्मांडों के असंख्य शिव, असंख्य ब्रह्मा, असंख्य कैलास, असंख्य वैकुंठ और गोलोक, ब्रह्मपुर एवं असंख्य करोड़ स्थल मेरे ही तेज से तेजोद्दीप्त हैं।

मैं कैसा हूँ? यदि मैं अपने पैर के अँगूठे से पृथ्वी को हिला दूँ, तो असंख्य ब्रह्माण्डों की पृथ्वी डिगने लग जाएगी। मेरे तेज द्वारा ही सूर्य, चंद्रमा तथा तारागण आदि-तेजोमय बने हुए हैं।' (वच. अम. 7)

भक्तचिन्तामणि में कहा है :

'वळी कहुँ एक वारता, सर्वे कीधुं आपणुं थाय छे ।
सुखदु:ख वळी जय-पराजय, यत् किंचित् जे कहेवाय छे ॥
जे जे आपणने नव गमे, ते जीव केम शके करी ।
जुओ सर्वे जक्तमां, कोण शके छे फेल आचरी ॥
...ते माटे तमे सांभळो, सत्संगी सहु नरनार ।
जे जे थाय छे जक्तमां, तेनो बीजो नथी करनार ॥'[6]
'मारुं धार्युं असत्य सत्य थाय छे, समरथ मारुं नाम सहि ।
मारी दृष्टिए जक्त ऊपजे शमे, अनेक रूपे माया थई ॥'[7]

प्रेमानंद स्वामी रचित 'आज मारे ओरडे' इस कीर्तन में श्रीहरि के कर्तापन की बात इस प्रकार समझाई गई हैं:

'जीव ईश्वर तणो रे, माया काल पुरुष प्रधान ।
सौने वश करुं रे, सौनो प्रेरक हुँ भगवान ॥
अगणित विश्वनी रे, उत्पत्ति, पालन, प्रलय थाय ।
मारी मरजी विना रे, कोईथी तरणुं (तृण) नव तोडाय ॥'[8]

भगवान को सर्वकर्ता-हर्ता जानने की आवश्यकता

भगवान को सर्वकर्ता जानना ही जीव के परम कल्याण का साधन है।

---

6. भगवान कहते हैं कि मैं आपको एक बात कहता हूँ, सृष्टि में जो कुछ भी होता दिखाई दे रहा है, सबका कर्ता मैं हूँ। सुख-दु:ख, जय-पराजय इन्हें आप चाहे जो भी कहें, हमारी इच्छा के बिना कार्य करने की शक्ति किसी जीव में नहीं है। सारे जगत में ऐसा कौन है जो मेरी इच्छा के विरुद्ध आचरण कर सके? जितने भी पुरुष और स्त्री सत्संगी हैं, सभी सुनो - इस जगत में जो कुछ होता है उसे दूसरा कोई नहीं कर सकता । (भक्तचिंतामणि : प्रकरण : 76)
7. मैं सर्व समर्थ हूँ, सर्व शक्तिमान हूँ। मेरी इच्छा मात्र से ही असत्य सत्य हो जाता है । मेरी दृष्टिमात्र से जगत का सृजन एवं संहार होता है, और माया अनेक रूपों में विस्तीर्ण होती है। (भक्तचिंतामणि : प्रकरण : 68)
8. मैं जीव, ईश्वर, माया, काल, पुरुष, प्रधान इन सबका प्रेरक एवं नियंत्रक हूँ, मैं भगवान हूँ। अनन्त ब्रह्माण्डों का सर्जक, पालक और प्रलयकर्ता भी मैं ही हूँ। मेरी इच्छा के बिना कोई तृण भी नहीं तोड़ सकता।

श्रीजीमहाराज कहते हैं, 'जीव के कल्याण के लिए भी इतनी ही बात है कि इस समस्त जगत के कर्ता-हर्ता एकमात्र भगवान हैं।' (वच. ग. म. 21)

'वास्तव में जीव का कल्याण तो इतनी ही बात में है कि प्रकट प्रमाण श्रीकृष्ण नारायण द्वारा ही किया हुआ सब-कुछ होता है, किन्तु काल, कर्म और माया आदि का किया हुआ कुछ नहीं होता। इस प्रकार भगवान ही एक कर्ता हैं ऐसा समझना यही मोक्ष का परम तत्त्व है। ...जो मनुष्य भगवान को ही सर्वकर्ता और सर्वहर्ता नहीं मानता, उससे बड़ा कोई दूसरा पापी नहीं है। उसे तो गौहत्या, ब्रह्महत्या, गुरुस्त्री-संग तथा ब्रह्मवेत्ता सद्गुरु का द्रोह करनेवाले पुरुष की ही अपेक्षा घोर पापी समझना चाहिए। क्योंकि वह भगवान को कर्ता न मानकर काल-कर्मादि को कर्ता समझता है। अत: ऐसे नास्तिक-चांडाल की छाया तक में नहीं खड़ा रहना चाहिए।' (वच. का. 10)

'भगवान ही सबके कर्ता-हर्ता हैं। उनका त्याग करके केवल इन सबको-काल, कर्म, स्वभाव और माया को-ही कर्ता मानना भगवान का अतिद्रोह है।' (वच. वर. 2)

इसलिए, सच्चा उपासक वह है जो 'भगवान को काल, कर्म, स्वभाव, माया तथा पुरुष जैसा न समझें तथा इन सभी से भिन्न माने उन सबका नियन्ता और कर्ता समझे है तथा उन सबका नियन्ता और कर्ता समझे तथा सबका कर्ता होने पर भी वे निर्लेप हैं, ऐसा माने (इस प्रकार प्रत्यक्ष भगवान के स्वरूप का निश्चय करें।) (वच. ग. प्र. 62)

श्रीहरि की इस प्रकार, कर्ताभाव की दृढ़ समझ आत्मसात् करनेवाला अनन्य आश्रित निर्भय हो जाता है। इस जगत में जहाँ जो कुछ हो रहा है, उसके कर्ता भगवान हैं, ऐसी दृढ़ समझ होने से भक्त को काल, कर्म, माया, किसी दूसरे देव, देवी, मंत्र, जंत्र, तंत्र आदि का भय नहीं रहता। ऐसी निर्भय स्थिति होने पर ही ब्रह्म की प्राप्ति होती है। भगवान के कर्तापन की दृढ़ निष्ठा होने पर सुख-दु:ख में बुद्धि स्थिर रहती है।

अक्षरब्रह्म गुणातीतानंद स्वामी ने बातों में कहा है : 'यदि कोई मार-मार करता हुआ आ रहा हो तो ऐसा समझना चाहिए कि मेरे स्वामी का किया ही सबकुछ हो रहा है। परंतु उनके बिना किसी के भी द्वारा एक पत्ता तक हिल नहीं सकता।' (स्वा. वा. 1/88)

भगवान सर्वशक्तिमान हैं, सर्वकर्ता हैं, ऐसी निष्ठा होने से भक्त भगवान की आज्ञा के पालन में सक्षम होता है। भगवान की महिमा भक्त के हृदय में दृढ़ होने से भक्त की आध्यात्मिक उन्नति होती है, और अंत में एकान्तिक भाव सिद्ध हो जाता है।

विपरीत देशकाल होने पर, भक्त यदि धर्म-नियमों का पालन न भी कर पाएँ, तो भी उसकी निष्ठा उसे निराश होने से बचा लेती है। वास्तव में, मोक्षमार्ग में 'मेरा मोक्ष होगा या नहीं' इस प्रकार की संशय बुद्धि अवरोधक बन जाती है। अतः भगवान सर्वकर्ता हैं, इस सिद्धांत में दृढ़ निष्ठा होना उपासना का मूलभूत सिद्धांत है।

❖ ❖ ❖

3 साकार

साकार स्वरूप में रुचि

भगवान स्वामिनारायण ने मूर्ति के बिना केवल दिव्य तेज में रुचि नहीं दिखाई है। इसका अर्थ है कि साधक को दिव्य तेज के स्तर पर ही रुकना नहीं है। दिव्य तेज का मूल स्त्रोत तो परमात्मा स्वयं हैं, जो साकार रूप में अक्षरधाम के दिव्य तेज के मध्य में विराजमान रहते हैं, श्रीहरि ने इस प्रकार भगवान के साकार स्वरूप में ही अपनी रुचि बताई है। (वच. लो. 14)

वे वचनामृत में कहते हैं, '(रामानुजाचार्य ने भगवान के साकाररूप का सिद्धान्त प्रतिपादित किया है) हम भी इसी पक्ष को ग्रहण करते हैं।' (वच. ग. प्र. 71) अपने स्वाभाविक गुण की बात करते हुए श्रीहरि कहते हैं कि, '(हमें) भगवान के **साकार स्वरूप में दृढ़ प्रतीति** है। हमने (निराकार प्रतिपादन करते हुए) वेदांत के कितने ही ग्रंथ पढ़े और सुने हैं, तो भी यह प्रतीति मिटती ही नहीं। (वच. ग. म. 39)

भगवान की साकारता में श्रीहरि का जो नि:शंक दृढ़ विश्वास है, उसका कारण बताते हुए वे कहते हैं, 'हमने यह (साक्षात्कार की) वार्ता **प्रत्यक्ष देखकर** ही कही है। इसीलिए, इसमें किसी भी प्रकार का संशय नहीं करना चाहिए।' (वच. ग. प्र. 64)

यदि कोई मुमुक्षु भगवान को साकार मानकर उपासना करता हो, **तो वह भी उन्हें बहुत प्रिय था।** (वच. ग. अं. 30 के आधार पर)

निम्नलिखित वचनामृत से यह अधिक स्पष्ट होता है, 'जिसके हृदय में भगवान की भक्ति हो और जो यह समझता हो कि जैसे (साकाररूप में) प्रकट भगवान पृथ्वी पर विराजित हैं और जैसे (साकाररूप में) भक्त उन भगवान के समीप बैठते हैं वैसे के वैसे ही आत्यन्तिक प्रलय होने पर भी

रहते हैं' और 'ये भगवान तथा भगवद्भक्त सदा साकार ही हैं', ऐसा समझता है। तथा चाहे जैसे (शुष्क) वेदान्ती के ग्रंथों को सुने, पर भगवान और भगवद्भक्तों को निराकार समझता ही नहीं है, और वह ऐसा जाने कि 'भगवान के सिवा दूसरा कोई भी जगत का कर्ता है ही नहीं' तथा जो यह जानता हो कि 'भगवान की आज्ञा के बिना सूखा पत्ता भी हिलने में समर्थ नहीं हो पाता।' ऐसी जिसे भगवान में साकार भाव की दृढ़ प्रतीति हो तो वह साधारण-सा होगा, **तो भी वही हमें पसंद है।'** (वच. ग. प्र. 37)

जिसकी बुद्धि भगवान के साकार स्वरूप में दृढ़ है उसीने श्रीहरि की दृष्टि में उपासना सिद्ध की है : 'जिसे भगवान के स्वरूप में सदैव साकार-भाव की दृढ़ निष्ठा हो और भजन करनेवाला यदि स्वयं ब्रह्मरूप हो जाए तो भी उस निष्ठा का लोप न हो और निराकार भाव का प्रतिपादन करनेवाले चाहि किसी भी ग्रंथ को सुने, तो भी भगवान के स्वरूप को सदा साकार ही समझे, और शास्त्रों में चाहे कैसी ही बात आए, किन्तु स्वयं भगवान के साकार स्वरूप का ही प्रतिपादन करे, परन्तु अपनी उपासना का खंडन नहीं होने दे। इस प्रकार जिसकी दृढ़ समझ हो, उसे **उपासक कहते हैं।'** (वच. ग. प्र. 40) परंतु 'जो भगवान को साकार नहीं समझता, उसकी उपासना दृढ़ नहीं हो सकती।' (वच. ग. अं. 35) अतः 'भगवान के आकार का कभी भी खंडन नहीं करना चाहिए।' (वच. ग. प्र. 71)

श्रीहरि ने स्वमुख से स्पष्ट बताया है कि भगवान के साकार स्वरूप में ही उन्हें दृढ़ विश्वास है, रुचि है और जिन भक्तों का ऐसा विश्वास है, उनसे ही उनकी प्रीति है।

उनकी यह भी इच्छा है कि उनके भक्तों को भी ऐसी ही निष्ठा हो। जिससे वे समस्त पापों से छुटकारा पाकर परम कल्याण को प्राप्त करें। इसी प्रकार वे अपने तमाम हरिभक्तों को आज्ञा देते हैं कि भगवान के साकार स्वरूप में निष्ठा रखो। वे विश्वास दिलवाते हैं कि 'यदि भगवान के साकार रूप में दृढ़ विश्वास होगा तो मनुष्य ने कदाचित् कुछ पाप भी कर लिया हो, परन्तु उसका उद्धार ही होगा। वह पाप भगवान के प्रताप से भस्मीभूत हो जाएगा और मुमुक्षु भगवान का साक्षात्कार करेगा। अतः भगवान सर्वदा साकार है, ऐसा दृढ़ विश्वास रखकर दृढ़तापूर्वक उनकी उपासना करें और

इस वार्ता को सुदृढ़ बनाए रखें।' (वच. ग. म. 39)

कदाचित् कोई कच्ची बुद्धिवाला हो और उसे भगवान के साकार स्वरूप की दृढ़तापूर्वक निष्ठा भी नहीं है, उस पर निराकारवादी विचारों का असर न हो इसलिए श्रीहरि आज्ञा देते हुए कहते हैं, 'जिन शास्त्रों में भगवान के साकार-भाव का प्रतिपादन न किया गया हो वे ग्रन्थ यदि शुद्ध वेदान्त के हों तथा एक अद्वितीय निराकार स्वरूप का प्रतिपादन करनेवाले हों, ऐसे ग्रंथ चाहे कितने ही बुद्धिमान पुरुषों द्वारा रचित किए गए हो, तो भी उनका कभी अध्ययन एवं श्रवण नहीं करना चाहिए।' (वच. लो. 6) श्रीहरि ने भगवान को निराकार माननेवाले शुष्क वेदान्तियों का संग करने के लिए मना किया है।[9]

इस प्रकार श्रीहरि ने भगवान के साकार स्वरूप के प्रति अपनी रुचि स्पष्ट बताई है, तो दूसरी ओर निराकार की मान्यता के प्रति अपनी स्पष्ट असहमति भी बताई है। एक दिन श्रीहरि ने शुष्क ज्ञानियों से लिखे शास्त्र सुने, तो अत्यंत उदास हो गये और मस्तक पर बांधा हुआ फेंटा खुलकर शिथिल हो गया। एक घड़ी तक उदास बैठे रहे, और आँखों से आँसू निकालने लगे। उन्होंने परमहंसों से कहा, 'हमने शुष्कज्ञानियों[10] का मत जानने के लिए उनके शास्त्र का श्रवण किया। उसके श्रवणमात्र से हमारे अन्त:करण में ऐसी उद्विग्नता हो गई।' (वच. ग. म. 19)

भगवान को निराकार समझने से हानि

वचनामृत में अनेक स्थानों पर निराकार की मान्यता का खंडन और साकार-मान्यता का प्रतिपादन किया गया है। हम यहाँ श्रीहरि के अवतरणों से उसे समझने का प्रयत्न करेंगे।

भगवान को निराकार समझने से जो प्राप्य स्वरूप है, जिसका ध्यान, भजन करना है, उसी स्वरूप का खंडन हो जाता है। इसलिए श्रीहरि कहते हैं कि 'भगवान को निराकार समझने के रूप में किया गया पाप तो **पंच महापापों की अपेक्षा भी बहुत बड़ा पाप है**। इस पाप का कोई भी प्रायश्चित्त नहीं है।' (वच. ग. म. 39, ग. प्र. 71)

---

9. वच. ग. प्र. 48; ग. म. 18, 19; ग. अं. 36।
10. निराकारवादी।

'भगवान करचरणादि समग्र अंगों से परिपूर्ण हैं... उन्हें अरूप कहा जाएगा... तो इसे ही भगवान के विरुद्ध द्रोह माना जाएगा... और चन्दनपुष्पादि द्वारा पूजा की, तो भी उसे भगवान का द्रोह माना जाएगा।' (वच. वर. 2)

'(भगवान के स्वरूप को) निराकार तथा अन्य अवतार-सदृश जानेगा तो उस स्वरूप के विरुद्ध द्रोह कहलाएगा।' (वच. ग. म. 9)

लोक-व्यवहार में या भक्तिमार्ग में कोई कितना भी कुशल हो या शास्त्र में पारंगत हो, फिर भी श्रीहरि ने कहा, 'यदि कोई सर्वगुणसम्पन्न पुरुष भगवान को अलिंग (अ + लिंग = निराकार) समझता हो, परन्तु मूर्तिमान न मानता हो, तो यह एक बड़ा दोष है, जिसके कारण **उसके समस्त गुण दोषरूप हो जाते हैं।'** (वच. लो. 16)

'किन्तु, जो जीव इन भगवान को निराकार समझकर ध्यान-उपासना करते हैं वे तो **ब्रह्म सुषुप्ति में विलीन हो जाते हैं** और फिर वे वहाँ से कभी भी नहीं निकल पाते तथा भगवान से **कोई ऐश्वर्य भी प्राप्त नहीं करते।'** (वच. ग. प्र. 64)

गुणातीतानंद स्वामी ने कहा है, 'भगवान के स्वरूप को निराकार कहने तथा जाननेवाले तथा सत्शास्त्रों के अर्थों को उलटा करनेवाले जो हैं वे अनन्त जन्म तक त्रेतायुग में दस हज़ार वर्ष, द्वापर युग में हज़ार वर्षों तक व कलियुग में सौ वर्षों तक उन्हें गर्भ में से जैसे बच्चे को शस्त्र द्वारा काट-काट कर निकालें (इतना दुःख होगा) और बच्चा रोने भी नहीं पाएगा। वैसे ही ऐसे जीव अनन्त कल्पों तक दुःख भोगेंगे। सुखी तो होंगे ही नहीं।' (3/16)

भगवान निराकार है इस विचार का उद्भव कैसे हुआ ?

श्रीहरि के मतानुसार भगवान को निराकार मानने से पंच महापाप से भी अधिक पाप लगता है, भगवान का द्रोह होता है और गुण भी दोष में बदल जाते हैं; तब यह प्रश्न उठता है कि निराकार की मान्यता का उद्भव कैसे हुआ?

श्रीहरि इसके उत्तर में कहते हैं, 'श्रीमद्भागवत में साकार ब्रह्म का प्रतिपादन किया गया है, फिर भी श्रीमद्भागवत का पाठ करनेवाले **यदि**

परमेश्वर की भक्ति से रहित हों, तो उन्हें श्रीमद्‌भागवत से भी भगवान का स्वरूप निराकार ही लगता है।' (वच. ग. म. 10)

भक्तिसूत्र के रचयिता नारदजी तथा शौनक आदि ऋषियों ने भी भगवान के चरित्रों की कथा कही है। श्रीमद्‌भागवत की कथा तो शुकदेवजी ने कही है। वे भगवान के ध्यान को छोड़कर भगवान की कथा करने लगे थे :

परिनिष्ठितोऽपि नैर्गुण्ये उत्तमद्धलोकलीलया ।
गृहीतचेता राजर्षे! आख्यानं यदधीतवान् ॥

अर्थात् शुकदेवजी राजा परीक्षित से कहते हैं, 'हे राजर्षि! जिस देह का सत्त्व, रज और तम से आविर्भाव हुआ है, उस देह से मैं अपने आपको पृथक् अनुभव करता हूँ, ऐसे आत्मभाव में रहते हुए भी मैं भगवान की दिव्य लीलाओं की ओर आकर्षित हो गया हूँ और भागवत पुराण के अध्ययन में मेरा चित्त समाहित हो गया है।' (श्रीमद्‌भागवत पुराण : 2-1-9)

यहाँ स्पष्टरूप से भगवान की लीला गाते हुए शुकजी कहीं भी भगवान के स्वरूप को निराकार कह सकते हैं क्या? जब मनुष्य चरित्रों को भी उन्होंने दिव्य बताए हैं, कि भगवान के स्वरूप तो दिव्य और निर्गुण हो इसमें क्या संशय है? उनके स्वरूप में मायिक रूप-गुण हैं ही नहीं, फिर भी कई अज्ञानी और श्रद्धाहीन लोग परमात्मा को निराकार कहने लगे, जड़ता के कारण अपनी बात पर अड़े रहे। शास्त्रों से अपने काल्पनिक मत की पुष्टि करनेवाले शब्द पसंद करके उसीके अनुसार उपदेश करते हैं और भक्तों को विमुख पथ पर ले चलते हैं।

शास्त्रों में प्रतिपादित शाब्दिक अभिव्यक्ति को **एकान्तिक भक्त के सिवा अन्य कोई भी जीव नहीं समझ पाता।**

भगवान के निराकार स्वरूप के विचार उन्होंने फैलाए, जिन्होंने भगवान का सम्यक् साक्षात्कार नहीं किया, अथवा जिन्हें भगवान के प्रति श्रद्धा-भक्ति नहीं थी, अथवा जिन्हें भगवान के साकार स्वरूप में विश्वास नहीं था। ऐसे लोगों ने शास्त्र के मर्म और रहस्य को यथार्थ रूप से नहीं समझा या वे जान-बूझकर शास्त्र के अर्थों को विकृत कर समाज में प्रसारित कर रहे हैं।

श्रीहरि ने वच. लोया 15 में एक सुंदर दृष्टांत दिया है कि एक गाय

के एक-एक अंग को ही अलग व्यक्तियों ने देखे, एक ने स्तन को, दूसरे ने खुर को, तीसरे ने मुख को देखा, तो ऐसा ही कहा जाएगा की सभी ने गाय को देखा है। लेकिन क्या सभी ने गाय का सम्यक् रूप देखा है? नहीं। ठीक उसी प्रकार जिसकी आत्मा का जितना अधिक प्रकाश हो, वह उतना ही आत्मदर्शी होता है, ऐसे लोग अपनी-अपनी दृष्टि से देखी 'आत्मा' पर बोलते है तो उनका दर्शन सम्यक् रूप से आत्मदर्शन नहीं कहा जा सकता।

वचनामृत ग. प्र. 66 में इसी कारण कहा गया है कि एकान्तिक संत ही सम्यक् आत्मदर्शी होते हैं। उनके उपदेशों से ही '**शास्त्रों में प्रतिपादित शब्द एकान्तिक भक्त के सिवा किसी की समझ में नहीं आता।**' वे कैसे शब्द हैं, जो समझ में नहीं आते? तो, जैसे 'भगवान अरूप है तथा ज्योतिस्वरूप हैं तथा निर्गुण हैं और सर्वत्र व्यापक हैं,' ऐसा जो निरूपण है, वह सुनकर जो मूर्ख है, वह यह समझता है कि 'शास्त्रों में तो भगवान को निराकार ही बताया गया है।' (वच. ग. प्र. 66)

इसलिए चाहे किसी भी प्रकार के शास्त्रों का पठन-पाठन करते हों, किन्तु उनमें यदि भगवान के निर्गुण स्वरूप का प्रतिपादन किया गया हो, तो भी वहाँ ऐसा समझना चाहिए कि (यह तो) इन भगवान की मूर्ति की महिमा बताई गई है। परन्तु भगवान तो सदा मूर्तिमान ही है, इस प्रकार **समझनेवाले को एकांतिक भक्त कहते हैं।** (वच. ग. प्र. 66)

जब हम किसी एक शास्त्र के आधार पर भगवान के रूप को समझना चाहते हैं, तब हमारी समझ अधूरी रह जाती है। अतः श्रीहरि वचनामृत में कहते हैं, 'वेदों में तो नारायण ने अपने श्रीमुख से स्वयमेव भगवान के स्वरूप का विभिन्न प्रकार से वर्णन किया है, परन्तु यह बात किसी की समझ में नहीं आई।...

इस प्रकार सांख्य शास्त्र तथा योगशास्त्रों के द्वारा भगवान के स्वरूप का वर्णन तो किया गया, परन्तु भगवान के साक्षात्कार स्वरूप का ज्ञान नहीं हुआ। परंतु केवल अनुमान से तो सिद्ध कर दिया... परन्तु वे भगवान काले हैं या पीले हैं? लम्बे हैं या ठिगने हैं? साकार है या निराकार हैं? इन प्रश्नों के विषय में कोई ज्ञान नहीं हुआ।'

'तत्पश्चात् स्वयं वासुदेव भगवान ने पंचरात्र नामक तन्त्र का निर्माण

किया, जिसमें यह प्रतिपादन किया कि 'श्रीकृष्ण पुरुषोत्तम भगवान अपने अक्षरधाम मेंसदा दिव्य साकार मूर्ति निवास करते हैं। इस प्रकार साकार मूर्ति का प्रतिपादन किया... अत: **वेद आदि (सांख्य, योग, वेदांत तथा पंचरात्र) चार शास्त्रों द्वारा भगवान के स्वरूप को समझ लेता है, वही पूर्ण ज्ञानी कहलाता है।'** (वच. वर. 2)

'जो एकमात्र वेदान्तशास्त्र द्वारा ही भगवान के स्वरूप को समझता है, तो यह दोष आता है कि भगवान को जिस प्रकार सर्वकारण, सर्वव्यापक तथा निर्गुण कहा गया है, उन्हें वह निराकार समझता है, परन्तु वह भगवान के प्राकृत कर-चरणादि रहित और दिव्य अवयव वाले सनातन आकार को नहीं मानता।' (वच. ग. प्र. 52)

इसलिए केवल सत्पुरुष के द्वारा ही शास्त्रों के विरोधाभासों को समझें तो भगवान के साकार रूप में विश्वास होता है। श्रीहरि कहते हैं, 'इस वार्ता के मर्म को केवल वही पुरुष समझ सकता है, जो इन भगवान के स्वरूप को सदैव दिव्य साकार रूप मानकर उपासना करने की अपनी दृढ़ निष्ठा पर अटल बना हुआ है, परन्तु अन्य कोई भी मनुष्य इसे समझने में समर्थ नहीं हो पाता। (वच. ग. प्र. 64)

भगवान साकार कैसे हैं ?

श्रीहरि ने बुद्धिग्राह्य रीति से अनेक वचनामृतों में समझाया है कि भगवान साकार हैं।

'भगवान का स्वरूप निराकार नहीं है, क्योंकि भगवान से ही समस्त स्थावर-जंगम (चल-अचल) की सृष्टि होती है। यदि भगवान निराकार होते, तो उनसे साकार सृष्टि कैसे संभव हुई होती? जैसे आकाश निराकार है, तो उससे पृथ्वी द्वारा घटादिक आकार नहीं होते, वैसे ही **ब्रह्मादि सृष्टि साकार है, तो उसके कर्ता परमेश्वर भी साकार ही हैं।'** (वच. ग. म. 10)

इस बात का अधिक विश्लेषण करते हुए श्रीहरि दृढ़तापूर्वक कहते हैं, 'भगवान तो सदैव साकार ही हैं... यदि **भगवान का स्वरूप साकार न हो, तो उनको कर्ता नहीं कह सकते, जिस प्रकार अरूप आकाश कर्ता नहीं है** अत: उसको एकदेशस्थ भी नहीं कह सकते।' (वच. ग. अं. 35, पं. 1, ग. म. 39)

इसी बात को श्रीहरि ने अन्य रीति से भी समझाया है कि '**भगवान पुरुषोत्तम हैं, वे तो सदा साकार ही हैं तथा महातेजोमय मूर्ति हैं।** अन्तर्यामी रूप से सर्वत्र पूर्ण जो सच्चिदानन्द ब्रह्म है, वह तो मूर्तिमान पुरुषोत्तम भगवान का तेज है। श्रुतियों में भी ऐसा कहा गया है कि **वे भगवान माया के सामने देख रहे थे।' अतः जब वे देख रहे थे, तो क्या उन्हें अकेली आँखें ही होंगी? हाथ-पैर भी तो होते हैं। इस प्रकार यहाँ तो साकार रूप का ही प्रतिपादन हुआ** तथा जिस प्रकार, समग्र जल के जीवरूप वरुण अपने लोक में साकार हैं, किन्तु जल निराकार कहलाता है, अग्नि की ज्वाला निराकार कहलाती है, परन्तु उसके देवता अग्नि अपने अग्निलोक में साकार हैं और जैसे समग्र धूप निराकार कहलाती है, परन्तु सूर्यमंडल में व्याप्त सूर्यदेव साकार हैं, **वैसे ही सच्चिदानन्द ब्रह्म निराकार है, परन्तु पुरुषोत्तम भगवान साकार हैं,** और सर्वत्र पूर्णरूप से विद्यमान सच्चिदानन्द ब्रह्म पुरुषोत्तम भगवान का तेज है। यहाँ कोई तो ऐसा कहेंगे कि श्रुतियों में तो ऐसा बताया गया है कि 'परमेश्वर तो कर-चरणादि से रहित और सर्वत्र पूर्ण हैं', यहाँ श्रुतियों ने करचरणादि का जो निषेध किया है, वह तो मायिक कर-चरणादि का निषेध है। परन्तु भगवान का आकार तो दिव्य है, मायिक नहीं है। यद्यपि अन्तर्यामी रूप से जीव-ईश्वर में व्यापक जो पुरुषोत्तम भगवान का ब्रह्मरूप तेज है, वह निराकार है, तथापि वे जीव-ईश्वर दोनों को उनके कर्मानुसार यथायोग्य कर्मफल देने में नियन्ता है तथा साकार के समान नियन्ता होकर क्रिया करता है। अतः उस तेज को साकार जैसा समझना चाहिए। इस प्रकार भगवान पुरुषोत्तम सदैव साकार ही हैं, परन्तु निराकार नहीं हैं! फिर भी, उन्हें जो निराकार कहते हैं, वे तो ना-समझ लोग ही हैं।' (वच. ग. प्र. 45)

इस बात को अधिक दृढ़ रीति से समझाते हुए श्रीहरि कहते हैं, एकान्तिक भक्त यह समझता है कि 'शास्त्रों में भगवान को अरूप एवं निर्गुण प्रतिपादित किया गया है, वह उनके **मायिक रूप-गुण के निषेध के लिए ही बताया गया है,** और भगवान तो नित्य दिव्यमूर्ति तथा अनन्त कल्याणकारी गुणों से युक्त हैं।' उन्हें जहाँ **तेज का पुंज बताया गया है, वहाँ यह समझना है कि बिना मूर्ति के तेज होता ही कहाँ से?** इस दृष्टि से वह तेज तो मूर्ति का ही तेज है। ... उसी प्रकार ब्रह्मसत्तारूप कोटि सूर्यों का

जो प्रकाश है, वह पुरुषोत्तम भगवान की मूर्ति का ही प्रकाश है। ...इसलिए, चाहे किसी भी प्रकार के शास्त्रों का पठन-पाठन करते हों, पर उस समय यदि भगवान के निर्गुण रूप का प्रतिपादन देखा गया, तो वहाँ यह समझना चाहिए कि यहाँ तो भगवान की मूर्ति की महिमा ही कही गई है, अन्यथा भगवान तो सदा मूर्तिमान ही है।' (वच. ग. प्र. 66)

जो मूर्तिमान है वह व्यापक कैसे हैं?

वेदांतादिक शास्त्रों में भगवान को सर्वत्र व्यापक बताया गया है। जो भगवान व्यापक हैं, उन्हें मूर्तिमान और जो मूर्तिमान हैं, उन्हें व्यापक कैसे कहा जाए? मुक्तानंद स्वामी के इस प्रश्न के उत्तर में श्रीहरि ने वचनामृत में कहा है, **ब्रह्म तो एकदेशस्थ होते हुए** भी सर्वदेशस्थ हैं। ...विभिन्न ग्रन्थों में भगवान को व्यापक बताया गया है। वे तो मूर्तिमान हैं। वे ही अपने सामर्थ्य से एक स्थान पर रहते हुए भी सबको दर्शन देते हैं। इस प्रकार उनको व्यापक कहा गया है। फिर भी वे **आकाश की तरह अरूप होकर व्यापक नहीं हैं।** भगवान सदा मूर्तिमान ही हैं। मूर्तिमान भगवान अक्षरधाम में निवास करने पर भी अनंतकोटि ब्रह्मांडों में प्रतीत होते हैं।' (वच. वर. 13)

'जीव निराकार है, तो निराकार जीव में भगवान अलिंग (निराकार) भाव से रहते हैं या मूर्तिमान होकर रहते हैं?' श्रीहरि ने उत्तर दिया, 'भगवान तो इन्द्रियों, देवता, अन्त:करण तथा जीव इन सभी के आश्रय-भाव से जीव में रहते हैं। जैसे श्रीकृष्ण भगवान ने उद्धव द्वारा गोपियों से कहलाया था कि ...जैसे मैं इस मथुरा में रहा हूँ, वह तो जिस प्रकार महाभूत विशेषरूप से ब्रह्मांड में रहते हैं उसी प्रकार रहा हूँ। तथा जैसे ये पंचभूत जीवों के शरीरों में सामान्य रूप से रहते हैं, वैसे ही मैं तुम्हारे पास रहता हूँ। मैं सहजरूप से दृष्टिगोचर भी नहीं होता, वह तो तुम सबकी चित्तवृत्ति का निरोध मेरे स्वरूप में हो जाए, इसलिए मैं नहीं दिखाई पड़ता, परन्तु रहता तो **मैं मूर्तिमान ही हूँ।**' (वच. लो. 15)

इस प्रकार जीव में भगवान मूर्तिमान ही हैं। वे व्यापक कैसे होते हैं, इसे समझाने के लिए श्रीहरि ने कहा है, '**जो मूर्तिमान हों, वे व्यापक भी हो सकते हैं।** जैसे अग्निदेव अपने लोक में मूर्तिमान हैं तथा अपनी शक्ति द्वारा काष्ठ में

रहे हैं, वैसे ही भगवान भी अपने अक्षरधाम में मूर्तिमान होकर अपनी अन्तर्यामी शक्ति के द्वारा जीवों में व्यापक होकर रहे हैं तथा मूर्तिमान की तरह क्रिया करते हैं, इसलिए इन्हें भी मूर्तिमान मानना चाहिए।' (वच. का. 4)

वचनामृत के इन संदर्भों से यह स्पष्ट हो जाता है कि भगवान अपने दिव्य रूप में दिव्यधाम-अक्षरधाम में रहते हैं, और साथ-साथ अपनी अन्तर्यामी शक्ति के द्वारा सर्वत्र व्यापक हैं। अन्तर्यामी शक्ति का भी रूप है जैसा कि श्रीहरि ने समझाया, 'अन्तर्यामी रूप से जीव-ईश्वर में व्यापक जो पुरुषोत्तम भगवान का ब्रह्मरूप तेज है, वह निराकार है, तथापि वे जीव-ईश्वर दोनों को उनके कर्मानुसार यथायोग्य कर्मफल देने में नियन्ता है तथा साकार के समान नियन्ता होकर क्रिया करता है। अतः उस तेज को साकार जैसा समझना चाहिए।' (वच. ग. प्र. 45)

इस रीति से पुरुषोत्तम नारायण **सर्वत्र व्यापक तथा मूर्तिमान ही हैं।**

भगवान अक्षरधाम में और पृथ्वी के उपर साकार हैं

कुछ लोगों का मत हैं कि जब भगवान पृथ्वीलोक में मनुष्य रूप धारण करके दर्शन देते हैं, तब उन्हें सगुण-साकार कहते हैं। परन्तु अपने दिव्यधाम में निराकार हैं। श्रीहरि इस मत को स्पष्ट रूप से अस्वीकार करते हैं।

श्रीहरि ने कहा है कि भगवान अपने धाम-अक्षरधाम में साकार ही हैं: 'भगवान के अक्षरधाम में स्थित भगवान का आकार तथा उनके पार्षद मुक्तजनों के आकार तो सत्य, दिव्य और अतिशय प्रकाशयुक्त हैं। वहाँ उन भगवान तथा मुक्तजनों का आकार पुरुष के समान द्विभुज और सच्चिदानन्दरूप है।' (वच. ग. अं. 38)

'भगवान के ब्रह्मपुर धाम में भगवान सदैव साकार-मूर्तिमान विराजमान है।' (वच. ग. अं. 7)

प्रेमानंद स्वामी रचित कीर्तन में श्रीहरि ने कहा है :

'मारुं धाम छे रे, अक्षर अमृत जेनुं नाम ।
तेमां हुं रहुं रे, द्विभुज दिव्य सदा साकार ॥'[11]

11. मेरा जो धाम है उसका नाम अक्षर-अमृत है। उसमें मैं सदा दिव्य, द्विभुज, साकाररूप में रहता हूँ।

अक्षरधाम में स्थित भगवान की दिव्य मूर्ति का वर्णन करते हुए श्रीहरि कहते हैं, 'मेरे हृदय में सर्वत्र तेज ही तेज व्याप्त रहा करता है। उस तेज में एकमात्र भगवान की मूर्ति ही दिखाई पड़ती है, जो अत्यन्त प्रकाशमय है। यद्यपि वह मूर्ति घनश्याम है, परन्तु वह अतिशय तेज के कारण श्याम नहीं, बल्कि अत्यन्त श्वेत दीखाई पड़ती है। वह मूर्ति द्विभुज है। उस मूर्ति के दो चरण हैं। वह अतिशय मनोहर है। वह मूर्ति चतुर्भुज अथवा अष्टभुज या सहस्रभुज नहीं हैं। वह मूर्ति अतिसौम्य, मनुष्याकार तथा किशोरस्वरूप है।' (वच. ग. म. 13)

अनेक वचनामृतों में श्रीहरि ने स्पष्ट किया है कि अक्षरधाम में भी भगवान साकार हैं और पृथ्वी पर प्रकट हुए तो भी साकार ही हैं । अत: भगवान सदा साकार ही हैं।

इस बात को और अधिक स्पष्ट करने के लिए श्रीहरि कहते हैं, 'जैसे (साकार रूप में) प्रकट भगवान पृथ्वी पर विराजित हैं और जैसे (साकार रूप में) भक्त उन भगवान के समीप बैठते हैं, वैसे के वैसे ही आत्यन्तिक प्रलय होने पर भी रहते हैं और 'ये भगवान तथा भगवद्भक्त सदा साकार ही हैं।' (वच. ग. प्र. 37)

भगवान जैसे पृथ्वी पर साकार हैं, उसी तरह आत्यंतिक प्रलय के समय होते हैं, अक्षरधाम में भी साकार हैं। जैसे अक्षरधाम में साकार रूप में हैं, उसी तरह पृथ्वी पर भी मनुष्याकार हैं। श्रीहरि समझाते हैं, 'आत्यन्तिक प्रलय के समय भी भगवान तथा भगवान के भक्त **दिव्य साकार रूप द्वारा दिव्य भोगों को भोगते हुए अक्षरधाम में ही रहते हैं।** वहाँ भगवान का रूप एवं भगवद्भक्तों का रूप अनन्त सूर्य-चन्द्रों के प्रकाश सदृश तेजोमय बना रहता है। ...ऐसे तेजोमय दिव्यमूर्ति भगवान जीवों के कल्याण के लिए तथा जीवों से अपनी नवधा भक्ति कराने के लिए कृपापूर्वक अपनी समस्त शक्तियों, ऐश्वर्यों तथा पार्षदों को साथ में लेकर ही मनुष्यरूप में प्रकट होते हैं। तब भी मर्मवेत्ता पुरुष यही समझते हैं कि **अक्षरधाम में भगवान का जैसा स्वरूप रहता है, वैसा ही पृथ्वी पर भी भगवान का मनुष्यस्वरूप रहता है।** वे उस स्वरूप तथा इस स्वरूप में लेशमात्र भी अन्तर नहीं समझते।' (वच. पं. 7)

संक्षेप में, 'भगवान सदैव साकार ही हैं।' (वच. ग. अं. 35)

दिव्यभाव

एक ऐसी मान्यता है कि भगवान अपने धाम में दिव्य तथा साकार हैं किन्तु जब पृथ्वीलोक पर मनुष्यरूप में अवतार लेते हैं, तब उनकी देह, इन्द्रियाँ एवं अंत:करण पंचभौतिक तत्त्वों से बने होते हैं। इसलिए यह स्वरूप दिव्य नहीं है। श्रीहरि कहते हैं, 'ऐसे परब्रह्म पुरुषोत्तम भगवान ही स्वयमेव कृपा करके जीव के कल्याण के लिए पृथ्वी पर प्रकट होते हैं। तब वे जिन-जिन तत्त्वों (पृथ्वी, जल आदि) को अंगीकार करते हैं, वे **सभी तत्त्व ब्रह्मरूप** (दिव्य) होते हैं। क्योंकि रामकृष्णादि अवतारों के स्वरूपों में स्थूल, सूक्ष्म एवं कारण इन तीन देह तथा जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति इन तीन अवस्थाओं के भाव दिखाई देते हैं, तथा दस इन्द्रियाँ, पंचप्राण इत्यादि भी मनुष्य के समान ही दिखाई देते हैं। परन्तु ये सब ब्रह्म (दिव्य) हैं, मायिक नहीं।' (वच. ग. प्र. 71)

इसकी पुष्टि करते हुए श्रीहरि कहते हैं, 'भगवान का स्वरूप ही ऐसा है कि माया में अन्वय होते हुए भी व्यतिरेक ही हैं। परन्तु, भगवान को ऐसा भय नहीं है कि 'यदि मैं माया में चला जाऊँगा तो अशुद्ध हो जाऊँगा।' वास्तविक बात यह है कि जब भगवान माया में आते हैं, तब **माया भी अक्षरधामरूप** हो जाती है। यदि वे चौबीस तत्त्वों में प्रविष्ट होते हैं, तो **चौबीसों तत्त्व भी ब्रह्मरूप** (अर्थात् माया से निर्बन्ध) हो जाते हैं।' (वच. वर. 7)

'भगवान में जो शिशुत्व, युवता, तथा जन्ममरण के भाव दिखायी पड़ते हैं, वह भगवान की योगमाया के कारण ही दिखाई देता है, परन्तु **वास्तव में तो भगवान जैसे हैं, वैसे के वैसे ही हैं।** (वे सदा दिव्य ही हैं) ...इस प्रकार सबके कारण, **सदा दिव्य और साकार** प्रत्यक्ष पुरुषोत्तमनारायण की मूर्ति जैसी देखी हो, उसीका ध्यान, उपासना एवं भक्ति आदि करना चाहिए, परन्तु उससे पृथक् और कुछ भी नहीं समझना चाहिए। तथा शक्कर के खिलौने में किसी तरह का त्यागभाग नहीं होता, उसी तरह का त्यागभाग नहीं होता, **उसी तरह भगवान की मूर्ति में भी त्याग भाग नहीं होता।** ...उन भगवान में जो देहभाव दीखता है, उसे **जादूगर की माया की तरह** समझना चाहिए।' (वच. पं. 7)

गुणातीतानंद स्वामी कहते हैं, 'भगवान के मनुष्यभाव में मोह होने की बहुत सी बातें कहीं, परन्तु भगवान में तो मनुष्यभाव कहा ही नहीं जा सकता और जैसे हमारा देह और जीव भिन्न हैं वैसा भगवान के बारे में नहीं कह सकते।' (स्वा. वा. 4/41) 'क्योंकि जो मनुष्यभाव दिखाई देता है वह तो नट की माया की तरह है।' (स्वा. वा. 5/66)

भगवान जिन-जिन तत्त्वों को अंगीकार करते हैं, वे सब उनके सम्पर्क से दिव्य हो जाते हैं, ब्रह्मरूप-चैतन्य हो जाते हैं। अतः भगवान में ऐसा कुछ भी नहीं है जिसका त्याग किया जाए। अतः श्रीहरि परामर्श देते हैं कि भगवान के दिव्य आकार में तत्त्वों के सम्बन्ध में वाद-विवाद में मत पड़ो, 'जो भक्त भगवान के स्वरूप को तत्त्व सहित समझता है, वह भी पापी है और जो भगवान के स्वरूप को तत्त्व रहित जानता है, वह भी पापी है। भगवान के भक्त को भगवान के स्वरूप में तत्त्व होने या न होने के प्रश्न पर वाद-विवाद करना बिल्कुल अच्छा नहीं लगता। **जो भक्त होता है, वह तो यही जानता है कि भगवान तो भगवान ही हैं।'** (वच. ग. म. 17)

इस बात को दृढ़ करने के लिए श्रीहरि कहते हैं, 'उस तेज में दिव्यमूर्ति पुरुषोत्तम भगवान वासुदेव निरंतररूप से विराजमान रहते हैं। वे ही स्वयं दिव्यमूर्ति होकर जीवों के कल्याण के लिए मनुष्याकृति द्वारा पृथ्वी पर सभी लोगों के लिए दृष्टिगोचर होकर विचरण करते हैं। ऐसे समय में जगत में जो नासमझ-मूर्ख जीव हैं, वे उन भगवान को मायिक गुणों से युक्त कहते हैं। परन्तु, **भगवान मायिक गुणयुक्त नहीं हैं। वे सदैव गुणातीत दिव्यमूर्ति ही हैं।** भगवान का वही साकार दिव्यस्वरूप, जिसे वेदान्त शास्त्र 'निर्गुण, अछेद्य, अभेद्य तथा सर्वव्यापी' बताकर उसका प्रतिपादन करता है। वह जीव की बुद्धि में से भगवान के स्वरूप सम्बंधी मायिक भावों को मिटाने के लिए भगवान को निर्गुणरूप कहकर प्रतिपादन करता है, किन्तु भगवान तो उत्पत्ति, स्थिति तथा प्रलय तीनों समय एकरूप से ही विराजमान रहते हैं, परन्तु मायिक पदार्थों की तरह विकार को प्राप्त नहीं होते। वे **सदा दिव्यरूप** से ही विराजमान रहते हैं।' (वच. का. 7)

'वे भगवान तो **परम दिव्यमूर्ति** हैं और उनमें लेशमात्र भी मनुष्य-भाव नहीं है। अतः उन भगवान में से मनुष्य-भाव को दूर करके देवभाव लाना,

इसके पश्चात् ब्रह्मादि का भाव लाना, बाद में प्रधान-पुरुष का भाव, इसके पश्चात् प्रकृति-पुरुष का भाव और बाद में अक्षर का भाव लाना चाहिए। इसके पश्चात् भगवान में वे 'अक्षरातीत पुरुषोत्तम' है ऐसा भाव आता है।' (वच. लो. 18)

दिव्यभाव को अधिक स्पष्ट करते हुए श्रीहरि कहते हैं, 'उस धाम में स्थित मूर्ति एवं श्रीकृष्ण की इस प्रकटमूर्ति में अधिक सादृश्य है। ...अतः गुणातीत जो अक्षरधाम है, वहाँ जो मूर्ति है, वही मूर्ति प्रत्यक्ष है, उन दोनों में कोई भेद नहीं। जैसे **धाम की मूर्ति गुणातीत है, उसी तरह मनुष्य मूर्ति भी गुणातीत है।**' (वच. ग. अं. 31)

इस प्रकार से भगवान तो सदा दिव्य गुणातीत मूर्ति ही हैं। जब वे इस लोक में प्रकट होते हैं, तब अपने भक्तों को सुख और सेवा देने के लिए, उनके मनोरथों को पूर्ण करके अंत में उनका कल्याण करने और असुरों को मोह उत्पन्न करने के लिए मनुष्य भाव का अभिनय करते हैं। किन्तु भगवान में लेशमात्र भी दोष नहीं है। 'सत्संगिजीवन' में यह बात स्पष्ट की गई है।[12]

दिव्यभाव समझने की आवश्यकता

भगवान पृथ्वी पर और अपने धाम में दिव्यमूर्ति ही हैं। वे मनुष्यभाव इसलिए स्वीकारते हैं कि वे अपने भक्तों के स्तर पर आकर उन जैसे ही दिखाई दें। भगवान में दिव्यभाव रखने से भक्तों को उस मनुष्यमूर्ति में स्नेह बढ़ता रहे। अतः एक सच्चा भक्त भगवान में दिव्यभाव ही रखता है। इसके द्वारा ही भक्त माया के बंधन से छूटकर अंत में मुक्ति पाता है, इसलिए दिव्यभाव रखना आवश्यक है।

श्रीहरि ने इस केन्द्रीय विचार को अनेक वचनामृतों में समझाया है। जैसे कि, 'जो पुरुषोत्तम भगवान क्षर-अक्षर से परे हैं वे जब जीवों के कल्याण के लिए ब्रह्मांड में मनुष्यरूप धारण करके विचरण करते हैं, तब वे मनुष्यों के समान ही समस्त लीला दिखाते हैं। जिस प्रकार मनुष्यों में जय, पराजय, भय, शोक, काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर, आशा, तृष्णा तथा ईर्ष्या आदि मायिक स्वभाव होते हैं, वैसे ही स्वभाव भगवान भी अपने

12. *'असुराणां विमोहाय दोषा विष्णोर्नहि क्वचित्।'*

(सत्संगिजीवन : 3/29-107, 108)

स्वरूप में दिखलाते हैं। वास्तव में भगवान की ऐसी **समस्त लीलाएँ जीवों के कल्याण के लिए ही होती हैं।** जो भक्त हैं, वे तो इन लीलाओं का गान करके **परमपद को प्राप्त करते हैं।** ...भगवान मनुष्यरूप धारण करके जैसी-जैसी लीलाएँ करते हैं, वे सब चरित्र गान करने योग्य चरित्र हैं, परन्तु ऐसा नहीं समझना चाहिए कि **'भगवान होकर भी वे ऐसा क्यों करते हैं?' भगवान की समस्त लीलाओं को कल्याणकारी ही समझना चाहिए, यही भक्त का धर्म है तथा ऐसा समझनेवाला ही भगवान का पूर्ण भक्त कहलाता है।'** (वच. ग. प्र. 72)

श्रीहरि इस बात को गीता के प्रमाणों से भी समझाते हैं। भगवान ने गीता में कहा है कि :

जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्त्वतः ।
त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन! ॥

इस श्लोक का अर्थ यह है कि 'हे अर्जुन ! मेरे जन्म एवं कर्म दिव्य हैं। जो पुरुष उनकी दिव्यता को समझ लेता है, देहत्याग के पश्चात् उसका पुनर्जन्म नहीं होता, बल्कि वह मुझे ही प्राप्त कर लेता है। भगवान जो दिव्य चरित्र दिखाते हैं, वे तो भक्त तथा अभक्त-दोनों को दिव्य प्रतीत होते हैं, परन्तु जब भगवान मनुष्यों के समान प्राकृत चरित्र करते हैं, तब भी उनमें जिसे दिव्यता दिखाई पड़े और भगवान के उन चरित्रों में किसी प्रकार का दुर्भाव न रहे, ऐसी जिसकी निर्दोषबुद्धि हो, उसे ही **परमेश्वर की भक्ति** कही जाती है। जो ऐसी भक्ति करे, वही भक्त कहलाता है तथा उक्त श्लोक में प्रतिपादित फल भी ऐसे **भक्त** को ही मिलता है। ...अतएव, भगवान जो भी चरित्र करें, उन्हें गोपियों के समान दिव्य मान लेना चाहिए, परन्तु उन्हें किसी प्रकार से प्राकृत भावयुक्त समझकर दुर्भाव नहीं रखना चाहिए। ऐसी भक्ति **महादुर्लभ** है और एक-दो जन्मों के पुण्यों से ऐसी भक्ति नहीं मिलती। वह तो अनेक जन्मों के संचित शुभ संस्कारों से ही गोपियों-जैसी भक्ति का उदय होता है। **ऐसी भक्ति ही परमपद है।** इसलिए, इस प्रकार की भक्ति **ज्ञान तथा वैराग्य से भी अधिक महत्त्वपूर्ण है।** जिसके हृदय में ऐसी भक्ति हो, उसे भगवान से प्रीति होने में क्या शेष रह गया है? कुछ भी नहीं!' (वच. ग. म. 10)

तब परमेश्वर चाहे जैसे भी चरित्र करें, परन्तु उसको भगवान में किसी

भी प्रकार का दोषाभास नहीं होता। इस प्रकार जिसको महिमा सहित भगवान सम्बंधी निश्चय हो जाता है, वह भक्त निर्भय हो जाता है। (वच. वर. 12)

तप, त्याग, वैराग्य, व्रत, ध्यान, अष्टांगयोगादि अनन्त साधनों से भी जो स्वभाव, दोष, वासना नहीं मिटते, उन्हें मिटाने का उपाय बताते हुए श्रीजीमहाराज कहते हैं, 'अपने आप में चाहे जितने बुरे स्वभाव हों, पर यदि मुमुक्षु भगवान को अतिशय निर्दोष, दिव्य समझें तो वे स्वयं भी **अत्यन्त निर्दोष-दोषरहित हो जाते हैं।'** (वच. ग. प्र. 24)

'भगवान के स्वरूप में **किसी भी प्रकार का मायिक भाव नहीं है,** तथा ये भगवान तो माया तथा माया के कार्यभूत तीनों गुणों से परे हैं,' ऐसा भगवान सम्बंधी निश्चय जिसे दृढ़ हो चुका है, वह **माया को अवश्य तैर चुका है।** यद्यपि उस भक्त में माया के गुणों की प्रवृत्तियाँ - जो इन्द्रियाँ, अन्त:करण एवं देवता हैं, वे अपनी-अपनी क्रिया में क्यों न प्रवृत्त हों, फिर भी यह स्पष्ट है कि उसने माया को पार कर लिया है।' (वच. वर. 5)

'ये तो समर्थ हैं, अत: वे जो कुछ करते हैं, ठीक ही करते होंगे।' इस प्रकार जो भगवान को निर्दोष समझता हो, वही माया को पार लग चुका कहलायेगा।' (वच. लो. 4)

'अक्षरधाम में भगवान का जैसा स्वरूप रहता है, उनके सम्बन्ध में यह भी कहा जाता है कि उनकी माया की निवृत्ति हो चुकी है। वैसा ही पृथ्वी पर भी भगवान का मनुष्यस्वरूप रहता है। वे उस स्वरूप तथा इस स्वरूप में लेशमात्र भी अन्तर नहीं समझते। जिन्होंने इस प्रकार भगवान को जान लिया है, उन्हें ही **भगवान के तत्त्वतः ज्ञाता कहा जाता है। जिन्हें इस प्रकार का ज्ञान हो जाता है, उन्हें ही ज्ञानी एवं एकान्तिक भक्त भी कहते हैं।** इस प्रकार जिनको भगवान के प्रत्यक्ष स्वरूप का दृढ़ निश्चय हो, उन्हें भगवान के स्वरूप के सम्बंध में मायिकभाव रखते हुए कभी भी संशय नहीं होता। कदाचित् उनसे कभी किसी कुसंगवश अथवा प्रारब्धकर्म के योग से कुछ अनुचित आचरण हो जाता है, तो भी उनका कल्याण होता है।' (वच. पं. 7)

गुणातीतानंद स्वामी ने कहा है, 'भगवान और सन्त के स्वरूप में दिव्यभाव और मनुष्यभाव एक हो जाए तब भगवान के भजने का सुख मिलता है।' (स्वा. वा. 5/101) 'भगवान को निर्दोष समझने से ही निर्दोष

हो चुका है।' (स्वा. वा. 5/125)

'भगवान के स्वरूप को निर्दोष समझना तथा **बड़े बड़े एकान्तिक सन्तों** को भी वैसे ही समझना, इसके बराबर कोई साधन नहीं है।' (स्वा. वा. 2/172)

श्रीहरि भी कहते हैं, 'अति महान संत को अत्यन्त निष्कामी समझनेवाला जीव स्वयं कुत्ता जैसा कामी होने पर भी निष्कामी बन जाता है, परन्तु महापुरुष में कामुकता का दोष सोचनेवाला मनुष्य चाहे जितना निष्कामी हो, फिर भी घोर कामी हो जाता है। महान संत में क्रोध एवं लोभवृत्ति की कल्पना करनेवाला स्वयं क्रोधी और लोभी हो जाता है। महान सन्त को अतिशय निष्कामी, निर्लोभी, नि:स्वादी, निर्मानी और नि:स्नेही समझेगा तो वह भी इन **समस्त विकारों से मुक्त होकर दृढ़ हरिभक्त बन जाता है।'** (वच. ग. प्र. 58)

'सत्पुरुष के स्वरूप में हमेशा निर्दोष बुद्धि रखें, जो ऐसी निर्दोष बुद्धि रखता है, वह समस्त दोषों से रहित हो जाता है।' (वच. ग. प्र. 73) अत: भगवान और संत को दिव्य समझना अनिवार्य है।

भगवान में मनुष्यभाव देखने से हानियाँ

अभी तक हमने यह समझा कि भगवान और गुणातीत संत मनुष्य देह में प्रकट होते हैं फिर भी सदा दिव्य, निर्दोष और तीन गुणों से रहित हैं। उनमें माया और मनुष्य भाव का लेश भी नहीं होता। 'ऐसे भगवान में जो मन्द मतिवाले लोग होते हैं, वे जिन-जिन दोषों की कल्पना करते हैं, उनमें से **कोई भी दोष भगवान में नहीं हैं,** किन्तु इस प्रकार की कल्पना करनेवालों की बुद्धि में से ये दोष कभी भी मिटनेवाले नहीं है। उसमें भी भगवान को कामी, क्रोधी, लोभी तथा ईर्ष्यालु समझते हैं, वे स्वयमेव अत्यन्त कामी, क्रोधी, लोभी तथा ईर्ष्यावान हो जाते हैं! जो व्यक्ति भगवान पर इस प्रकार का दोषारोपण करते हैं, वे तो 'सूर्य के उपर फेंकी हुई धूल लौटकर अपनी आँखों में ही पड़ती है' यह कहावत के अनुसार, स्वयं को ही दु:खी बना लेते हैं और **जिन दोषों की कल्पना उसने भगवान में की थी वही दोष उसे ही पीड़ा देने लगते हैं!'** (वच. ग. प्र. 24)

इस विषय को और अधिक स्पष्ट करते हुए श्रीहरि कहते हैं :

'अवजानन्ति मां मूढा मानुषीं तुनमाश्रितम् ।
परं भावमजानन्तो मम भूतमहेश्वरम् ॥

अतः मूढ़ पुरुष भगवान के परमभाव को बिना जाने ही भगवान में अपने समान मनुष्य-भाव की कल्पना किया करते हैं।

यह मनुष्यभाव क्या है? तो काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर, आशा, तृष्णा आदि अन्तःकरण के भाव हैं और हाड़, चाम, मलमूत्रादि तथा जन्म, मरण, बाल्यकाल, यौवन और वृद्धावस्था आदि जो देहभावरूपी मनुष्य-भाव हैं, उनकी कल्पना ऐसे पुरुष भगवान में भी किया करते हैं। ऐसे भावों की कल्पना करनेवालों को यदि भगवान के स्वरूप के सम्बंध में निश्चय-सा प्रतीत होता है, परन्तु उनका निश्चय अपरिपक्व है और **उनका निश्चितरूप से सत्संग से पतन होगा।** ...जब तक वह भगवान में ऐसा दिव्यभाव नहीं मानता, तब तक उसको बात-बात में बुरा लगता है, तथा वह भगवान में समय-समय पर गुण और दोष देखा करता है और यह समझता है कि 'भगवान इसका पक्ष लेते हैं और हमारा ध्यान नहीं रखते, इसको अधिकाधिक बुलाते हैं और हमें नहीं बुलाते, इस पर अधिक स्नेह रखते हैं, किन्तु हमसे स्नेह नहीं करते।' इस प्रकार वह गुण और दोष देखा करता है, **इसी कारण उसका अन्तःकरण दिन-प्रतिदिन सत्संग से पिछड़ने लगता है और अन्त में वह विमुख हो जाता है।'** (वच. लो. 18)

'यदि उसी भक्त को कभी असत् देश, असत् काल, असत् संग तथा असत् शास्त्रादि के योग द्वारा अथवा देहाभिमान द्वारा भगवान के चरित्र में सन्देह हो गया, तथा भगवान में दोष दिखाई दिया, तो वह जीव, जो पहले **पूर्णिमा के चन्द्रमा** की तरह प्रकाशमान था, **अमावास्या के चन्द्रमा** के समान म्लान हो जाता है। अतः कुछ न्यूनाधिक दोष के रहने से जीव के लिए कोई मुश्किल नहीं होगी, किन्तु परमेश्वर के चरित्र में किसी भी प्रकार का सन्देह उत्पन्न हो गया अथवा परमेश्वर का किसी भी तरह से अवगुण दिखाई दिया, तो जीव का **कल्याण-मार्ग से तत्काल पतन हो जाता है।** जैसे वृक्ष की जड़ें कट जाने पर वह वृक्ष अपने आप सूख जाता है, वैसे ही जिसको भगवान में किसी भी रीति से दोषबुद्धि हुई, तो वह मनुष्य किसी

भी प्रकार से **विमुख हुए बिना नहीं रहता।**' (वच. वर. 12) 'ऐसे परमेश्वर के चरित्रों तथा भगवान की समझ में जो दोष देखता है, उसे **विमुख, अधर्मी** तथा **घोर मूर्ख समझना** चाहिए।' (वच. ग. म. 53)

भक्त चाहे कितना भी महान क्यों न हो किन्तु परमेश्वर के विषय में कुतर्क करे तो वह माया को पार नहीं कर सकता। श्रीहरि इसे स्पष्ट करते हैं, 'भगवान की योगकलारूप ऐश्वर्य को देखकर यदि ब्रह्मादिक जैसों को भी कुतर्क उत्पन्न होता है, तो वे माया के बल को पार नहीं पा सके, यही कहा जाएगा। (वच. लो. 4) गुणातीतानंद स्वामी कहते हैं, 'भगवान में मनुष्यभाव रह जाए तो कल्याण नहीं होता।' (स्वा.वा. 5/116)

यदि कोई, भगवान के समान ही भगवान के भक्त में भी मनुष्यभाव को आरोपित करे और अवगुण देखे, तो यह उसमें बुराई है और एक दिन वह सत्संग से बाहर हुए बिना नहीं रहेगा। वह एकान्तिक धर्म को छोड़ देगा। इस विचार को स्पष्ट करते हुए श्रीजीमहाराज कहते हैं, 'वास्तव में भगवान तथा भगवान के भक्त की अलौकिक समझ होती है। उसे देहाभिमानी जीव कैसे समझ सकेगा? इसलिए, वह अपनी मूर्खता के कारण भगवान तथा उनके भक्तों में अवगुण देखकर विमुख हो जाता है।' (वच. ग. म. 53)

'जो धर्म है, उनका प्रवर्तन करने के लिए होता है। जो एकान्तिक भक्त हैं, उनका दैहिक मरण होना, वस्तुतः मरण नहीं है। उनका तो एकान्तिक धर्म से च्युत होना ही मृत्यु है!... यदि भगवान तथा भगवान के भक्त में अवगुण देखा और उनके साथ दुर्भाव रखा, तो ऐसा पाप पंचमहापापों से भी बड़ा पाप होता है।' (वच. ग. म. 46)

सत्पुरुष में जिन-जिन दोषों को देखे, वे स्वयं देखनेवाले में आ जाते हैं, इसे स्पष्ट करते हुए श्रीहरि कहते हैं, 'महापुरुष में कामुकता का दोष सोचनेवाला मनुष्य चाहे जितना निष्कामी हो, फिर भी घोर कामी हो जाता है। महान संत में क्रोध एवं लोभवृत्ति की कल्पना करनेवाला स्वयं क्रोधी और लोभी हो जाता है।' (वच. ग. प्र. 58)

और फिर, 'ऐसा मनुष्य सत्पुरुष में जिस-जिस तरह के दोषों की कल्पना करता है, उस-उस प्रकार के दोष हृदय में आकर समा जाते हैं।' (वच. सा. 18)

अतः गुणातीतानंद स्वामी कहते हैं : **भगवान व सन्त में मनुष्यभाव आ जाता है, तो इससे बढ़कर कुछ बुरा नहीं है।** (स्वा.वा. 3/36)

साकार भगवान और भगवान के एकान्तिक अर्थात् गुणातीत संत में मनुष्यभाव की कल्पना करने से जो हानि होती है, जो अकल्याण होता है, उससे बचने के लिए अपने आश्रितों को चेतावनी देते हुए श्रीहरि कहते हैं, 'इसलिए, न तो भगवान में ही मनुष्यभाव देखना और न भगवान के भक्तों में ही मनुष्यभाव की कल्पना करना। ...इस बात को भले ही आज ही समझें और चाहे सौ वर्षों में समझें, परन्तु वैसा ही समझना है। **इस बात की गाँठ बाँधे बिना छुटकारा नहीं है।** इसलिए, समस्त हरिभक्तों का यह कर्तव्य है कि वे हमारी इस बात का परस्पर स्मरण करते-कराते रहें और जब किसी को अज्ञानवश कुछ बुरा लग जाए, तब उसे यह बात कहकर सावधान कर देना। **हमारी यह बात नित्य प्रति दिन में एक बार करना, ऐसी हमारी आज्ञा है। इसे भूलना नहीं, कभी भूलना नहीं।'** (वच. लो. 18)

इस प्रकार श्रीहरि ने स्पष्टरूप से आज्ञा दी है कि किसी को भी भगवान और भगवान के भक्त में मनुष्यभाव की कल्पना नहीं करनी चाहिए। उन्हें सदैव दिव्य ही समझना चाहिए।

भगवान और संत दिव्य और निर्गुण हैं। इनके सम्बन्ध में जो कोई आता है वे निर्गुण (गुणातीत) बन जाते हैं। इस बात को स्पष्ट करते हुए श्रीहरि कहते हैं, 'भगवान जो मनुष्यदेह धारण करते हैं, उनकी उस मूर्ति का जब कोई पुरुष ध्यान करता है, तब उस ध्यान करनेवाले को वह मूर्ति अक्षरधाम में तेजोमय एवं कैवल्यस्वरूप प्रतीत होती है। ध्यान के करनेवाले का जीव माया को पार कर परमपद को प्राप्त कर लेता है। इसीलिए, भगवान मनुष्यदेह धारण करने पर भी कैवल्यरूप ही रहते हैं। भगवान जिस स्थान पर विराजमान हों, वह स्थान भी निर्गुण है, तथा उन भगवान के वस्त्र, अलंकार, वाहन, परिचर्या करनेवाले सेवक तथा खान पान आदि जो-जो पदार्थ भगवान से सम्बंध रखते हैं, वे सभी निर्गुण हैं।' (वच. ग. म. 13)

सत्संगिजीवन में यह बात श्रीजीमहाराज इस प्रकार कहते हैं :

दिव्यं कृष्णस्य रूपं भवति च सततं तस्य लोकोऽपि दिव्यो ।
दिव्या भोगश्च भोग्यान्यपि च भगवतस्तस्य दिव्यानि सन्ति ॥

दिव्या वै पार्षदाश्च प्रकटितनृतनोः शक्तयस्तस्य दिव्या ।
दिव्या भक्ताश्च सर्वे जगति यदुपतेः सन्ति दिव्याः क्रियाश्च ॥

(सत्संगिजीवनः 3-29-143)

अर्थात् अक्षरधाम में विराजमान भगवान का स्वरूप दिव्य है, उसी तरह पृथ्वी पर प्रकट मनुष्य-शरीरधारी भगवान का स्वरूप भी नित्य दिव्य है। उनका धाम दिव्य है। उनके भोग दिव्य हैं, उनकी भोगयोग्य समस्त वस्तुएँ दिव्य हैं। उनके पार्षद दिव्य हैं। उनकी शक्तियाँ भी दिव्य हैं। उनके सभी भक्त भी दिव्य हैं और उनकी समस्त क्रियाएँ भी दिव्य हैं।

श्रीहरि ने इस सत्संग को दिव्य, ब्रह्मरूप और महाविष्णुरूप कहा है। इसलिए किसी मुमुक्षु को संप्रदाय या इसके किसी भी अंग का अवगुण नहीं देखना चाहिए। भक्तों को ब्रह्म की मूर्ति ही समझना चाहिए। फिर भी कोई मनुष्य यदि अधर्म में प्रवर्तमान हो और भगवान के द्वारा स्थापित की गई पंचवर्तमान की मर्यादा को छोड़कर चलता हो तथा अपनी दुर्बलताओं को छिपाने के लिए, पदार्थ एवं प्रतिष्ठा के स्वार्थ से निर्दोषबुद्धि की ढाल बनाता हो, तो उसका अवगुण लेने में दोष नहीं है। वास्तव में, वहाँ पर भक्तों में निर्दोषबुद्धि रखने का मर्म यही है कि जो सच्चे भक्त श्रीहरि की पंचवर्तमान की मर्यादा का पालन करते हों उनके स्वाभाविक दोष, प्रकृति को न देखकर, उनके प्रति दिव्य बुद्धि रखकर सत्संग करना। श्रीहरि के स्वरूप में दिव्यभाव[13] दृढ़ हो जाए तो यह स्थिति सहज ही आ जाती है।

सर्वज्ञता

वायुपुराण में परमात्मा के असाधारण लक्षण बताए गए हैं। उनमें प्रमुख लक्षण 'सर्वज्ञता'[14] को बताया है। परमात्मा सर्वज्ञ हैं। इस शब्द का स्थूल अर्थ नहीं लेना चाहिए। कारण यह है कि सर्वज्ञता का गुण तो ईश्वर और मुक्तों आदि में भी होता है। परमात्मा में सर्वज्ञता अन्य प्रकार की है।

---

13. यह सिद्धांत वच. ग. प्र. 56, 58; ग. म. 10, 17; पं. 4; लो. 18 आदि वचनामृतों का अभ्यास करने से दृढ़ होता है।

14. *सर्वज्ञता तृप्तिस्नादिबोधः स्वतंत्रता नित्यविलुप्तदृष्टिः ।*
अनन्तशक्तिश्च विभोर्विभुज्ञाः षडाहुरङ्गानि महेश्वरस्य ॥

अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड के पदार्थमात्र तथा जीवमात्र, ईश्वरकोटि का प्रत्येक ईश्वर, अपने दिव्यधाम में विराजमान अनंत कोटि मुक्त तथा मूल अक्षर की क्रियाओं को एककालावच्छिन्न[15] जानना, यह उनकी सर्वज्ञता है।

परमात्मा सबके हृदय में साक्षीरूप से बैठे सब जानते हैं। हृदय में रहकर, वह उनकी स्थूल-सूक्ष्म क्रियाओं को जानते हैं। वे उनके भूत, वर्तमान और भविष्य को जानते हैं। उनके गुण, दोष, स्वभाव और संकल्पमात्र को जानते हैं। जगत की उत्पत्ति, स्थिति, लय सम्बन्धी, ईश्वर के संकल्पों को भी जानते हैं। अक्षरधाम में विराजमान मुक्तों की भगवान की सेवा करने की तीव्र इच्छा को भी जानते हैं। उस आधार पर मुक्तों को सुख प्रदान करते हैं और उनके संकल्पों को पूर्ण करते हैं।

❖ ❖ ❖

15. *यो वेत्ति युगपत्सर्वं प्रत्यक्षेण सदा स्वतः ॥*

4 सर्वोपरि

'भगवान सर्वोपरि हैं' यह निष्ठा आवश्यक है

स्वामीश्री सहजानंदजी महाराज अर्थात् श्रीजी महाराज स्वयं भगवान हैं, ऐसी निष्ठा रखते हुए हम उनकी शरण ग्रहण करते हैं, उनका ध्यान, भजन करते हैं। फिर भी उनके आश्रितों को यह समझना आवश्यक है, कि महाराज सर्वोपरि अर्थात् सभी अवतारों के अवतारी हैं,

उनके स्वरूप में ऐसा दृढ़ निश्चय हो जाने से जीव को जन्म-मरण का भय मिट जाता है। उनके स्वरूप में दृढ़ निष्ठा हो जाने से आत्मा और अनात्मा का विवेक प्राप्त होता है। श्रीहरि ने कहा है, 'अपने इष्टदेव परमेश्वर में जितनी निष्ठा रहती है, उतना ही आत्मा-अनात्मा का विवेक रहता है, परन्तु इष्टदेव के बल के बिना तो कोई भी साधना सिद्ध नहीं होती।' (वच. ग. प्र. 56)

भगवान के दिव्य स्वरूप की महिमा की समझ तथा उसके महत्त्व को स्पष्ट करते हुए श्रीहरि कहते हैं, 'जब इस स्वरूप की उपरोक्त वार्ता यथार्थ रूप से समझ में आ जाएगी, तब पंचविषयों या काम-क्रोधादि स्वभावों पर विजय प्राप्त करने में प्रयास करना नहीं पड़ेगा, बल्कि उन्हें तो सहज ही जीत लिया जाएगा। ...परन्तु भगवान के स्वरूप के ज्ञान को समझने में यदि किसी प्रकार की कसर रह गई, तो किसी भी प्रकार आपकी कमी दूर नहीं हो पाएगी।' (वच. ग. म. 13)

इसका कारण बताते हुए गुणातीतानंद स्वामी कहते हैं, 'श्रीजीमहाराज को पुरुषोत्तम जाने बिना अक्षरधाम में नहीं जा सकते।'

इसलिए श्रीहरि कहते हैं, 'ज्ञानमार्गी को इस प्रकार समझना चाहिए कि 'किसी भी तरह भगवान के स्वरूप का द्रोह न हो जाए।' ...इसलिए,

विवेकशील पुरुष का भगवान की आज्ञा के पालन में जितना सामर्थ्य हो, उतना अवश्य करते रहना, परन्तु भगवान की मूर्ति का अतिशय संबल रखना कि सर्वोपरि, सदा दिव्य, साकार मूर्ति एवं समस्त अवतारों के अवतारी भगवान का स्वरूप ही मुझे प्राप्त हुआ है।

परन्तु जो पुरुष ऐसा समझता हो, उसे कदाचित् किसी कारणवश सत्संग से निकल जाना पड़े, फिर भी भगवान की मूर्ति से उसका अनुराग नहीं मिटता। भले ही वह सत्संग से बाहर है, किन्तु उसका देहान्त होने के पश्चात् अन्ततः वह अक्षरधाम में भगवान के सान्निध्य में पहुँचेगा। जो सत्संग में रहता होगा, तथा शास्त्रों के वचनों का भी पालन करता होगा, परन्तु उसे यदि भगवत्स्वरूप में निष्ठा सुदृढ़ नहीं है, तो वह देहत्याग करने के पश्चात् ब्रह्मा के लोक में जाएगा या किसी अन्य देवता के लोक में जाएगा; परन्तु पुरुषोत्तम भगवान के धाम में नहीं जाएगा! इसलिए, स्वयं को प्राप्त साक्षात् भगवान का जो स्वरूप है, उसे सदा दिव्य साकार मूर्ति तथा सर्व अवतारों के अवतारी और कारण समझना। ऐसा यदि नहीं जाना, और उस स्वरूप को निराकार तथा अन्य अवतार के सदृश जाना, तो उसका द्रोह ही किया है। (वच. ग. म. 9)

वचनामृत में और सम्प्रदाय के अन्य ग्रंथों में श्रीहरि को सर्वोपरि सर्व अवतारों के अवतारी एवं पूर्ण पुरुषोत्तम नारायण कहा गया है। निम्नलिखित अवतरणों के द्वारा उनकी सर्वोपरिता को समझा जा सकता है।

सबसे परे अक्षरधाम और अक्षरधामाधिपति सर्वोपरि श्रीहरि

अक्षरधाम श्रीहरि का धाम है। यह अन्य अवतारों तथा देवताओं के धामों (लोकों) से भिन्न और परे है। परमात्मा की आज्ञा से अवतार और उनके भक्त तथा देवता अलग-अलग लोक में रहते हैं। इस बात को सद्गुरु निष्कुलानंद स्वामी ने स्पष्ट रूप से समझाया है :

ब्रह्मा राख्या सत्यलोकमां, शिवने राख्या कैलास;
विष्णुने राख्या वैकुंठमां, एम आप्यो जुजवो निवास ।
इन्द्र राख्यो अमरावती, शेषजीने राख्या पाताल;

ज्यां ज्यां करी हरिए आज्ञा, तियां रह्या सुखे सदाकाल ।[16]

अक्षरधाम को छोड़कर ये समस्त लोक माया के अन्तर्गत आते हैं अत: वहाँ त्रिविध ताप है।

अक्षरधाम माया से परे है, अत: वहाँ त्रिविध ताप नहीं है। इस कारण वहाँ सुख अधिक है। इसे समझाते हुए श्रीहरि कहते हैं :

'पशु के सुख से मनुष्य में अधिक सुख, उससे अधिक राजा का सुख, उससे अधिक देवता का सुख, उससे अधिक इन्द्र का सुख, उससे अधिक बृहस्पति का सुख, उससे अधिक ब्रह्मा का सुख...।' इस प्रकार आगे भी कहते हुए श्रीजीमहाराज ने कहा, 'उससे अधिक **भगवान के अक्षरधाम का सुख बना रहता है**।'[17]

निष्कुलानंद स्वामी कहते हैं:

'जेह धामने पामीने प्राणी, पाछुं पडवानुं नथी रे,
सर्वे पर छे सुखनी खाणी, केवुं कहीए तेने कथी रे,
अनन्त मुक्त ज्यां आनंदे भरिया, रहे छे प्रभुजीनी पास रे,
सुख सुख ज्यां सुखना दरिया, त्यां वसी रह्या वास रे,
ऐवा धामनी आगळ बीजां, शी गणतीमां गणाय रे....'[18]

अर्थात् निष्कुलानंद स्वामी लिखते हैं: 'दिव्यधाम वह है जहाँ से प्राणी को पुन: लौटना नहीं पड़ता। सबसे परे वह सुख की खान है, वह सबसे परे है। वहाँ प्रभु के निकट अनंत मुक्त असीम आनंद से रहते हैं । वे ऐसे रहते हैं, जैसे वे अनंत सुख के सागर के मध्य रहते हैं। भगवान का अक्षरधाम अनोखा है, उसकी तुलना में सब धाम फीके हैं।'

इसलिए श्रीहरि कहते हैं, 'भगवान के अक्षरधाम की तुलना में अन्य देवताओं के लोकों को मोक्षधर्म में नरकतुल्य बताया गया है।' (वच. सा. 1, 4, 11 ग. अं. 28)

---

16. भगवान ने ब्रह्मा को सत्यलोक में रखा, शिवजी को कैलास में, विष्णु को वैकुण्ठ में, इन्द्र को स्वर्ग में रखा, शेषजी को पाताल में रखा... लेकिन जो अक्षरमुक्त थे, उन्हीं को अपने समीप अक्षरधाम में स्थान दिया। (निष्कुलानंद काव्य, वचनविधि – 37)
17. वच. पं. 1
18. चोसठपदी : 55, 56

अक्षरधाम के अतिरिक्त अन्य धाम नाशवान हैं, लेकिन अक्षरधाम अविनाशी है।

श्रीहरि समझाते हैं, 'भगवान के अक्षरधाम तथा उस धाम में स्थित भगवान की मूर्ति और उस धाम में रहनेवाले भगवान के भक्त, उनके सिवा जो अन्य लोक हैं और उन लोकों में निवास करनेवाले देवों और उन देवों के जो वैभव हैं, वे सब नाशवंत हैं।' (वच. ग. म. 24)

अन्य सभी धाम नाशवंत हैं, अतः जीवों को वहाँ से लौटना पड़ता है। केवल एक अक्षरधाम में से मुक्त को कभी नहीं लौटना पड़ता उसका पुनरागमन कभी नहीं होता।

न तद्भासयते सूर्यो न शशाङ्को न पावकः।
यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम ॥

अर्थात् 'मेरे उस स्वयं प्रकाशित धाम को सूर्य, चन्द्रमा और अग्नि भी प्रकाशित नहीं कर सकते हैं। जिसे प्राप्त कर लेने पर फिर संसार में पुनरागमन नहीं होता, वह परमधाम मेरा है। (गीता. 15/6)[19]

अन्य धामों में गुण का भाव है, परन्तु अक्षरधाम में नहीं हैं। (जैसे गोलोक में राधिकाजी और श्रीदामा में झगड़ा-तमोगुण का भाव आया था और वैकुंठ में जय-विजय के ऊपर सनकादिकों के क्रोध का प्रसंग हुआ था।)

दूसरे धामों की अवधि है। शास्त्रों में विविध धामों के वर्णन में कहा गया है कि यह धाम अमुक योजन विस्तारवाले हैं, किन्तु अक्षरधाम की अवधि नहीं है और अधो-ऊर्ध्व सब ओर सीमा रहित है।' (वच. लोया. 14)

अन्य धामों के वर्णन में मणियों, रत्नों आदि लौकिक पदार्थों का वर्णन हैं। किन्तु अक्षरधाम में तो सर्वत्र अलौकिक दिव्य तेज है और इस तेज के पुंज में पुरुषोत्तम, अक्षर और अक्षरमुक्त हैं।

'बोल्या श्री हरि रे...' इस प्रेमानंद स्वामी रचित पद में कहा है :

'मारुं धाम छे रे, अक्षर अमृत जेनुं नाम;
सर्व साम्रथी रे, शक्ति गुणे करी अभिराम ।

19. गीता : 15/6

अति तेजोमय रे, रवि शशि कोटिक वारणे जाय;
शीतळ शांत छे रे, तेजनी उपमा नव देवाय ।

(सद्‌गुरु प्रेमानंद स्वामी)

सद्‌गुरु निष्कुलानंद स्वामी भी कहते हैं :

'तेज तेज जियां तेज अंबार, तेजोमय तन तेनां रे,
तेजोमय ज्यां सर्वे आकार, शुं कहिये सुख ऐनां रे,
ते तेज मध्ये सिंहासन शोभे, तियां बेठा बहुनामी रे,
निष्कुलानंद कहे मन लोभे, पूरण पुरुषोत्तम पामी रे।[20]

दोनों का सारांश यही है कि मेरा अक्षर-अमृत जो धाम है, वही सर्व समर्थ, सर्वशक्तिमान है। वहाँ तेज ही तेज है, धाम अतिशय तेजोमय है। तेज अतिशय शीतल, शांत है, जिसकी उपमा भी देते नहीं बनती! वहाँ सभी के आकार तेजोमय हैं। सुख इतना है कि वाणी से उसका वर्णन नहीं हो सकता। उस तेज के मध्य एक सिंहासन शोभायमान है उस पर भगवान-बहुनामी विराजमान हैं। कवि कहते हैं: 'मेरा मन उस ओर आकर्षित होता है-मुझे पूर्ण पुरुषोत्तम मिले हैं।'

गुणातीतानंद स्वामी ने 'स्वामी की बातें' में स्पष्ट रूप से प्रतिपादन किया है कि अन्य धामों की अपेक्षा अक्षरधाम श्रेष्ठ है।

वेदरस के पृष्ठ 146 पर श्रीहरि अपने अक्षरधाम की सर्वोत्कृष्टता बताते हुए कहते हैं, 'ऐसा जो अक्षररूप धाम है, वह परात्पर है।'

संवत् 1869 (सन् 1813) के वर्ष में दुर्भिक्ष के समय श्रीजीमहाराज बीमार थे। तब अपनी योगशक्ति के द्वारा उन्होंने विभिन्न धामों की यात्रा की, अन्त में अक्षरधाम पहुँचे। अपनी यात्रा का वर्णन उन्होंने इस प्रकार किया, 'हम अकेले ही उन सबसे परे श्रीपुरुषोत्तम के धाम में पहुँचे। वहाँ भी मैं ही पुरुषोत्तम हूँ। मैंने अपने सिवा दूसरा कोई बड़ा नहीं देखा। ...जो-जो जीव मेरी शरण में आए हैं, ...तो मैं उन सबको अपना सर्वोपरि धाम प्राप्त करा दूँगा तथा उन्हें अन्तर्यामी जैसा कर दूँगा' (वच. अम. 7)

यहाँ श्रीजीमहाराज ने अक्षरधाम को सब से परे कहा और अपना धाम कहा और वहाँ वे ही पुरुषोत्तम हैं यह स्पष्ट रूप से कहा है। ऐसे

20. चोसठपदी 55

सब से परे तथा दिव्य अक्षरधाम के अधिपति श्रीजीमहाराज का सर्वोपरि होना तो स्वाभाविक ही है।

भगवान स्वामिनारायण सर्वोपरि – स्वकथन के आधार पर

श्रीहरि ने अपने श्रीमुख से अपने स्वरूप की सर्वोपरिता की बात अनेक स्थानों पर कही है। सामान्यत: भगवान जब मनुष्य रूप में पृथ्वी पर प्रकट होते हैं, तब अपनी दिव्यता एवं समग्र ऐश्वर्य को छिपाते हैं। अपने दिव्य स्वरूप के विषय में कुछ कहते हुए हिचकिचाते हैं, कारण यह है कि 'क्योंकि वार्ता कहते ही न जाने कोई उसमें से गलत सार निकाले! तथा उसने अपने मन में भगवान के सम्बंध में जो-जो मान्यता की हो, वह मान्यता टूट पड़े तो वह जड़ से ही सत्संग में से निकल जाए! परन्तु क्या करें! निश्चय की बात ही ऐसी महत्त्वपूर्ण है, कि उस विषय पर कहें बिना रहा नहीं जाता! इसके अतिरिक्त वह बात यदि समझ में न आए, तो दूषण भी बहुत बढ़ते हैं, तथा उसके निश्चय में अपक्वता भी बहुत रहती है।' (वच. लो. 18)

केवल सूर्य उगने के पश्चात् ही सूर्य का ज्ञान प्राप्त हो सकता है। इसी प्रकार केवल पुरुषोत्तम नारायण अपने स्वरूप का ज्ञान दें तभी उनके स्वरूप की महिमा समझी जा सकती है।

श्रीहरि को हम भगवान स्वीकार करते हैं। उन्हें परमात्मा समझकर ही हम उनकी पूजा, वंदन, और स्मरण-भजन करते हैं। श्रीमद् भागवत के अनुसार उन्हें सत्यस्वरूप और सत्यवक्ता जानकर उनके अपने श्रीमुख से निकले शब्दों को स्वत: प्रमाण समझकर उन्हीं शब्दों का अध्ययन करना चाहिए।

श्रीहरि ने पुराने दस्तावेजों में लिखाया है, 'दूसरा अवतार है सो कार्यकारण अवतार हुआ है और मेरा यह अवतार है सो तो जीवोकुं ब्रह्मरूप करके आत्यंतिक मुक्ति देने के वास्ते **अक्षरातीत पुरुषोत्तम जो हम वह मनुष्य जैसा बन्या हूँ।'**

पूर्वकाल में हुए अवतार कार्य के निमित्त (असुर संहार आदि) हुए थे। कार्य पूर्ण होने के बाद वे पृथ्वी से अंतर्धान हो गए। किन्तु भगवान स्वामिनारायण का अवतार तो जीवों को ब्रह्मरूप करके उनका आत्यंतिक

कल्याण करने के लिए हुआ था। श्रीहरि ने वचनामृत में अपनी सर्वोपरिता का स्पष्ट कथन किया हैं : 'ऐसे सर्वोपरि पुरुषोत्तम भगवान स्वयं दया करके जीवों के कल्याण के लिए इस पृथ्वी पर प्रकट हुए हैं और सभी भक्तजनों के समक्ष दृष्टिगोचर होते हैं। जो आप सबके इष्टदेव हैं और आप सब के द्वारा हो रही सेवा को अंगीकार करते हैं। ऐसे जो प्रत्यक्ष पुरुषोत्तम भगवान के स्वरूप में तथा अक्षरधाम में निवास करनेवाले भगवान के स्वरूप में कोई भी भेद नहीं है। वे दोनों एक ही हैं। ये प्रत्यक्ष पुरुषोत्तम भगवान तो अक्षरादि सभी के नियन्ता हैं तथा ईश्वरों के भी ईश्वर हैं और समस्त कारणों के भी कारण हैं। वे सर्वोपरि हैं और समस्त अवतारों के अवतारी हैं। ये भगवान ही आप सबके लिए एकान्तिक भाव से उपासना करने योग्य हैं। इन भगवान के इससे पहले अनेक अवतार हो चुके हैं, जो कि पूर्णत: वंदनीय एवं अर्चनीय हैं।' (वच. ग. अं. 38)

'यह जो एकरस तेज है, उसे आत्मा कहें या ब्रह्म कहें अथवा अक्षरधाम कहें, तथा उस प्रकाश में भगवान की जो मूर्ति दिखाई पड़ती है, उसे आत्मा का तत्त्व कहें अथवा परब्रह्म एवं पुरुषोत्तम कहें... तेजपुंज में जो मूर्ति है, वे ही ये प्रत्यक्ष महाराज है।'इस बात को दृढ़ करना।' (वच. ग. म. 13)

'जो भगवान इस सत्संग में विराजमान हैं, उन्हीं भगवान से समस्त अवतार हुए हैं। वे स्वयं तो अवतारी हैं और वे ही सबके अन्तर्यामी भी हैं। वे ही अक्षरधाम में तेजोमय एवं सदैव साकार रूप विराजमान हैं तथा अनन्त ऐश्वर्ययुक्त हैं। वे ही अनन्त ब्रह्मांडों के राजाधिराज तथा अक्षरब्रह्म के भी कारण हैं।' (वच. अम. 6)

श्रीजीमहाराज ने इन शब्दों से अपने सर्वोपरि स्वरूप की निष्ठा दृढ़ करने का संकेत दिया है। मोक्षमार्ग में सर्वोपरि स्वरूप की दृढ़ निष्ठा आवश्यक अंग है।

भगवान स्वामिनारायण की सर्वोपरिता – गुणातीतानंद स्वामी के अनुसार

जीवों को अपनी सर्वोपरिता की निष्ठा दृढ़ करवाने के लिए श्रीजीमहाराज अपने अक्षरधाम और चैतन्यमूर्ति पार्षदों को साथ लाए थे।

(वच. ग. प्र. 71)

श्रीहरि ने कहा है, 'जैसा मैं अक्षर में हूँ, वैसा मैं प्रकृतिपुरुष में नहीं हूँ।' इसका अर्थ यह है कि अक्षरब्रह्म गुणातीतानंद स्वामी से उत्तम और कोई नहीं है वे ही उनकी सर्वोपरिता की महिमा सबसे उत्तम रीति से कह सकते हैं। इसकी प्रतीति स्वामी की बातों के शब्दों से होती हैं। उनकी बातों का प्रत्येक शब्द श्रीहरि के सर्वोत्कृष्ट भाव का निरूपण करता है।

गुणातीतानंद स्वामी अपनी बातों की महिमा का वर्णन परभाव में आकर करते हैं : 'जन्म होने से पूर्व विवाह कहाँ से होगा? वैसे ही, जब पुरुषोत्तम आए ही नहीं थे तो उनकी बात शास्त्र में कैसे लिखी मिलती? शास्त्र में जीव के बारे में ईश्वर, माया और पुरुष तक के बारे में लिखा होता है। परन्तु पुरुषोत्तम की बात शास्त्र में कहां से होगी? और अवतार मात्र का बीज वैराट को कहते हैं। इसलिए वासुदेव जो सच्चिदानन्द ब्रह्म हैं, वहाँ तक की बात वेद में होगी। परन्तु उससे पर कहां से होगी ? पढ़े-लिखे लोगों को तो शास्त्रों के प्रति दृष्टि होती है। इसलिए उसे यह बात समझ में नहीं आती।' (स्वा. वा. 5/402) श्रीहरि इससे पूर्व इस पृथ्वी लोक में पधारे ही नहीं थे। तो उनकी महिमा की बातें शास्त्रों में केसे मिलेगी?

स्वामी ने अपनी वाणी की महिमा इन शब्दों में कही है: 'ये बातें तो खमियानों के तीर के समान हैं,' 'अंग्रेजों के लोहे (हथियार) जैसी हैं...' 'स्पर्शमात्र से रोगों को हटा दें ऐसी हैं,' 'अनंत संशयों को भेदनेवाली हैं,...' 'भगवान पुरुषोत्तम की बातें हैं।'

जूनागढ़ में स्वामी की बातों की अविरत धारा से गद्‌गद होकर सद्‌गुरु गोपालानंद स्वामी ने अपनी प्रसन्नता इन शब्दों में व्यक्त की, 'वरताल में एक चौथाई और गढ़डा में दो चौथाई बातें होती हैं, किन्तु पूरी की पूरी बातें तो (भगवान की महिमा की) जूनागढ़ में ही होती हैं।'

उन अद्‌भुत बातों की थोड़ी सी शब्द प्रसादी का आनंद लें :

(1) 'आज तो श्री पुरुषोत्तम, अक्षर और अक्षर के मुक्तों सहित पधारे हैं, उनके साथ असंख्य धामों के भगवान अपने-अपने मुक्त मण्डल सहित पधारे हैं, वे किस कारण से? तो... पुरुषोत्तम का स्वरूप समझने के लिए यहाँ आए हैं।' (3/41)

श्रीहरि के इस पृथ्वी पर प्रकट होने के छः कारणों में से चौथा कारण था : अवतारों और उनके भक्तों को अपने सर्वोपरि स्वरूप और उपासना को समझाना, जिससे वे अक्षरधाम की प्राप्ति कर सकें।[21]

❀

(2) 'उतना ही समझने का है कि श्रीजीमहाराज को पुरुषोत्तम समझना तथा इन्हें (मुझे-स्वयं स्वामीजी को) मूल अक्षर समझना।' (3/38)

❀

(3) श्रीजीमहाराज को पुरुषोत्तम जाने बिना अक्षरधाम में नहीं जा सकते और ब्रह्मरूप हुए बिना श्रीजीमहाराज की सेवा में नहीं रह सकते। तब शिवलाल सेठ ने प्रश्न पूछा, 'पुरुषोत्तम कैसे जाने? और ब्रह्मरूप किस प्रकार हों?' तब स्वामीश्री ने कहा, 'श्रीजीमहाराज तो सर्वोपरि सब अवतारों के अवतारी हैं, व सर्व कारणों के कारण हैं।' इस पर (गढ़डा) मध्य का नवमा व (गढ़डा) अन्त्य का अड़तीसवां वचनामृत पढ़ने को कहा कि आज तो सत्संग में साधु, मन्दिर और मूर्तियाँ सर्वोपरि हैं, तब महाराज के सर्वोपरि होने में क्या कहने को रह गया? वे तो सर्वोपरि ही हैं ऐसा समझना। ब्रह्मरूप तो इस प्रकार से हो सकते हैं, जो ऐसे सन्त को ब्रह्मरूप मानकर मन, वचन और कर्म द्वारा उनका संग करें वह ब्रह्मरूप होता है। उस पर वरताल का ग्यारहवां वचनामृत पढ़ने को कहा, फिर बोले, 'ऐसा जब होता है तो पुरुषोत्तम की सेवा में रह सकते हैं।' (स्वा. वा. 3/12)

❀

(4) अवतार मात्र तो लोह चुम्बक जैसे हैं। उनमें से कोई तो एक मन के (चुम्बक) समान है, कोई दस मन के समान है। कोई सौ मन के समान हैं और कोई लाख मन के समान है, जैसे एक मन लोह चुम्बक हो वह इस मन्दिर के लोहे को खींचे, दस मन चुम्बक सारे शहर के लोहे को खींचे, सौ मन चुंबक सारे देश के लोहे को खींचे, और आज तो समग्र चुंबक का पर्वत आया हुआ है, वर्ना सारा ब्रह्मांड आकर्षित कैसे हो सकता है?' ऐसा कहकर बोले कि 'पहले के अवतारों में जितना ऐश्वर्य था, उनमें

---

21. *स्वकीयावतारास्दीयाश्च भक्ता निजोपासनाज्ञानमाबोध्य तेषाम् ।*
तथौतान्स्वधामाधिनेतुं विचिन्त्यागतः श्रीहरिर्हेतुरुक्तश्चतुर्थः ॥

उतने जीव आकर्षित हुए। और आज तो सभी अवतारों के अवतारी, सर्व कारणों के कारण, ऐसे पुरुषोत्तम, वे ही स्वयं पधारे हैं, उन्हें देखकर तो अनन्तधामों के पति व उन धामों के मुक्त वे सभी महाराज की मूर्ति में आकृष्ट हो गए हैं, जैसे चुंबक के पर्वत को पाकर जहाज़ों की तमाम कीलें खींच जाती हैं वैसे ही!' (स्वा. वा. 3/4)

❀

(5) वादी, फूलवादी व गारुड़ी इन तीन प्रकार के सपेरों में से जो वादी सपेरा होता है, वह गरीब साँप को ही पकड़ता है, फूलवादी सपेरा हाथ में आए साँप को पकड़ता है और साँप वश में न आने पर बलदार कपड़े से उसे मार डालता है। तथा जो गारुड़ी सपेरा होता है उसके सामने तो चाहे जैसा मणिधर नाग आ जाए, वह भी डोलने लगता है। श्रीजीमहाराज तो गारुड़ी के समान हैं, उनके आगे तो जीव, ईश्वर, पुरुष व अक्षरादिक सब हाथ जोड़कर खड़े रहते हैं। (स्वा. वा. 3/5)

❀

(6) 'पहले बड़े बड़े अवतार हो गए हैं, उनसे तो इन सत्संगी के पुत्रों में करोड़ गुना अधिक दैवत दिखाई देता है। तब फिर बड़े-बड़े हरिभक्त, बड़े-बड़े सन्त व श्रीजी की महिमा की तो बात ही कैसे कही जाए? (स्वा. वा. 3/72)

❀

(7) ऐसे तो पहिले गणेशजी को प्रभु कहते हैं, इनके पश्चात् ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव को कहते हैं, फिर अनिरुद्ध, प्रद्युम्न एवं संकर्षण को भी कहते हैं, तब इन में से किसे प्रभु मानें? इसका निर्णय तो ऐसे होता है, जैसे जीव की कोटियाँ हैं, उसी प्रकार ईश्वर की भी कोटियाँ हैं, ब्रह्मा की भी कोटियाँ हैं। इन सब के कारण महाराज स्वयं हैं, ऐसा समझें तब पूरा रहस्य प्राप्त हुआ है। तथा अनंत कोटि राम, अनंत कोटि कृष्ण तथा अनंत कोटि अक्षर मुक्त उन सभी के कर्ता, सभी के आधार, सभी के नियंता तथा सभी के कारण श्रीजी महाराज को भी समझना ऐसा समझने पर सभी ज्ञान हो चूका। (स्वा. वा. 6/257)

❀

(8) 'एक से लेकर लाख बकरे बोले तो भी भय नहीं लगता। और एक केसरी सिंह बोले तो सबके हृदय में डर बैठ जाता है। और हाथी के कुम्भ-स्थल फट जाते हैं। इसी तरह महाराज को अवतार आदि कहने में किसी को संकोच नहीं लगता। परन्तु 'अवतार आदि सभी महाराज के दिए हुए ऐश्वर्य का भोग करते हैं, और उनका भजन करके ऐसे हुए हैं।' इस प्रकार बोलना तो केसरी सिंह के नाद से जैसे हाथी का कुम्भ स्थल फट जाए वैसा कठिन है।' (2/108)

भगवान स्वामिनारायण सर्वोपरि – अन्य परमहंसों के अनुसार

भगवान स्वामिनारायण के दिव्य तथा अनन्त ऐश्वर्ययुक्त प्रभावशाली व्यक्तित्व से आकर्षित हुए अनेक परमहंसों ने उनको पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान के रूप में स्वीकार किया था। जिन संतों को श्रीहरि में केवल भगवान होने का भाव था किन्तु सर्वोपरिता का निश्चय नहीं था, उनको भी श्रीहरि के असाधारण ऐश्वर्य और लोकोत्तर कार्य का अनुभव होता चला और उनकी सर्वोत्कृष्टता का अनुभव करके धीरे-धीरे सर्वोपरि निश्चय हो गया। ऐसे परमहंसों ने अपने ग्रन्थों में श्रीहरि सर्वोपरि इष्टदेव हैं, ऐसे कई प्रमाण प्रस्तुत किए हैं। इनमें से कुछ विवरण देखते हैं :

(1) निष्कुलानंद स्वामी ने तो अपने सभी ग्रंथों में महिमायुक्त शब्दों में श्रीहरि को पूर्ण पुरुषोत्तम, सर्वावतारी घोषित किए हैं :[22]

(अ) 'आद्य मध्य अंत्ये अवतार, थया अगणित थाशे अपार,
पण सर्वेना कारण जेह, ते तो स्वामी सहजानन्द एह।'

(ब) 'विधि पर ते विराट कहिए, ते पर प्रधान पुरुष लहिए,
ते पर मूळ प्रकृति पुरुष, तेथी पर अक्षर सुजश ।

---

22. (अ) परमात्मा के प्राचीन अवतार हुए, बीच-बीच में भी उन्होंने अवतार धारण किए तथा अंत में भी अवतार हुआ इस प्रकार अनेक अवतार हुए थे, और होंगे लेनिक सबके कारण रूप तो एक सहजानंद स्वामी ही है। (नि. का. अवतार चिंतामणि - 32)

(ब) ब्रह्मलोक से परे विराट लोक हैं, उससे परे प्रधानपुरुष तथा उससे भी परे मूल प्रकृति - पुरुष है और अक्षर तो उससे भी परे हैं। ऐसे अक्षर से परे जो

अक्षर पर पुरुषोत्तम जेह, तेणे धर्युं मनुष्यनुं देह,
तेनुं दर्शन ने स्पर्श क्यांथी, सहु विचारोने मनमांथी ।
जे छे मन वाणीने अगम, ते तो आज थया छे सुगम;'

(क) 'पछी बोलिया प्राणजीवन, तमे सांभळज्यो सहु जन,
तमने जे मळी छे मूरति, तेने निगम कहे नेति नेति ।
अतिअपार अक्षरातीत, थई तमारे ते साथे प्रीत,
भक्त जक्तमांही छे जो घणा, उपासक अवतार तणा ।
जे जे मूरति जनने भावे, ते मूरति निजधाम पहोंचावे,
पण सर्वे पार जे प्रापति, ते छे तमारे कहे प्राणपति ।'

'पुरुषोत्तम प्रकाश' में श्रीहरि के पुरुषोत्तम स्वरूप के अनेक प्रमाण हैं। जिनमें से एक यहाँ प्रस्तुत हैं:

(ड) 'कळश चडाव्यो कल्याणनो रे, सहुना मस्तक पर मोड़ ।
पुरुषोत्तम प्रगटी रे...
धन्य धन्य आ अवतारने रे, जोवा राखी नहि जोड़ । पु॰
धामी जे अक्षरधामना रे, तेणे आप्यो छे आनंद । पु॰

पुरुषोत्तम नारायण हैं उन्होंने मनुष्यवतार धारण किया है। उनका दर्शन तथा स्पर्श हमें कहां से मिल सकता? जो मन और वाणी के लिए भी अगम्य है, ऐसे परमात्मा आज हमें बहुत सुलभ हुए है। (भ. चिं. प्र. 77)

(क) भगवान ने कहा आपको जो मूर्ति मिली है उसकी महिमा कहते हुए वेदों ने भी 'नेति नेति' कह दिया है, ऐसे अति अपार, अक्षरातीत महिमावाले भगवान के साथ आपको प्रीत हुई है। इस संसार में भक्ति तो अनेक करते हैं, लेकिन वे अन्य अवतारों के ही उपासक हैं, जिस अवतार में जिसकी जितनी निष्ठा होती है वही अवतार जीव को अपने-अपने धाम में पहुँचाता है। लेकिन सबसे श्रेष्ठ जो प्राप्ति है वह तो आप सभी को है। (भ. चिं. प्र. 79)

(ड) पुरुषोत्तम नारायण ने प्रकट होकर कल्याण को अत्यंत सुलभ कर दिया। अत: इस अवतार को धन्य है, क्योंकि यही अवतार अद्वितीय है। अक्षरधाम के धामी ने हमें आनंद दिया है और अकल्याण के दरवाजे बंद करके अक्षरधाम का मार्ग खोल दिया है। आज तो मानो अषाढ़ी मेघ ने आकर हमें सुखी किया अन्य (अवतार तो) ओस के बिंदुओं के सान हैं। (नि. का. पुरुषोत्तमप्रकाश. 55)

बंध कीधां बीजां बारणां रे, वे'ती कीधी अक्षरवाट । पु॰
आषाढी मेघे आवी कर्यां रे, झाझां बीजा झाकळ । पु॰'

श्रीहरि को आषाढ़ के मेघ की उपमा दी गई है। (गुजरात में) आषाढ़ मास में बहुत वर्षा होती है, उससे पृथ्वी पर चारों ओर हरियाली छा जाती है। उसी प्रकार कवि कहते हैं कि अन्य अवतार तो ओस के समान हैं, जिनका प्रभाव पृथ्वी पर नहीं पड़ता और श्रीहरि तो आषाढ़ी मेघ के समान हैं ! इन शब्दों में निष्कुलानन्द स्वामी ने अपने सर्वोपरि भगवान की महिमा गाई है।

(२) 'सहजानंद स्वामी रे, पोते परब्रह्म छे रे,
स्वामिनारायण जेनुं नाम रे ।'[23]

(३) दिव्य चैतन्य अक्षर जेनुं घर छे जो,
क्षर अक्षर थकी ए तो पर छे जो...[24]

(४) 'कोटि विष्णु ब्रह्मा करे जोडी, शंकर कोटि सुरत आनी,
शारदा शेष अरू नारद बरने, नहि मानत नर अभिमानी.
'परब्रह्म पूरण पुरुषोत्तम, स्वामिनारायण सुमरानी,
सुखानंद शरणे सुख पायो, भजन भरोसा उर आनी.'
(सद्. सुखानंद स्वामी)

अष्ट संत कवियों के ऐसे कई पदों में, प्रकांड पंडित नित्यानंद स्वामी रचित 'श्रीहरिदिग्विजय' ग्रंथ में, गुणातीतानंद स्वामी की प्रेरणा से अचिंत्यानंद ब्रह्मचारी रचित 'श्रीहरिलीलाकल्पतरु' ग्रंथ आदि में अनेक स्थानों पर श्रीहरि सर्वोपरि हैं, ऐसे प्रमाण मिलते हैं।

अपने इष्टदेव के स्वरूप में सर्वोपरि निष्ठा होने के बाद इन परमहंसों को प्रकृतिपुरुष पर्यन्त कोई पदार्थ, लोक या व्यक्ति आसक्त नहीं कर सकता था! जब श्रीहरि ने स्वरूपानंद स्वामी से पूछा कि 'तुम्हें गोलोक में भेज दें!' तब उन्होंने जवाब दिया कि 'इस गड्ढ़े में तो पड़े ही हैं।'

---

23. अर्थात् सहजानंद स्वामी स्वयं परब्रह्म है, जिनका स्वामिनारायण नाम प्रसिद्ध है।
(सद्. मुक्तानंद स्वामी)

24. अर्थात् दिव्य चैतन्य ही जिनका घर है और जो क्षर तथा अक्षर से भी परे हैं।
(सद्. प्रेमानंद स्वामी)

उत्पत्ति सर्ग

श्रीहरि के सर्वोपरि स्वरूप को समझने के लिए सृष्टि का उत्पत्ति-सर्ग समझना चाहिए।

श्रीहरि ने उत्पत्ति सर्ग समझाते हुए विभिन्न देवताओं, ईश्वरों आदि की उत्पत्ति, उनके स्थान आदि का स्पष्ट वर्णन किया है। तत्त्वज्ञान में पाँच भेद अनादि कहे गए हैं। उसमें जीव कोटि में चार-प्रकार की योनि उद्भिज, जरायुज, अंडज और स्वेदज जीव तथा देव कोटि सभी आ जाते हैं। ईश्वरकोटि में विराट से प्रकृतिपुरुष तक सब शामिल हैं। माया को भगवान की शक्ति कहा गया है। माया अक्षरब्रह्म के प्रकाश में लय हो जाती है। (नि. का. पुरुषोत्तमप्रकाश प्र. 10/19, 20)

श्रीहरि कहते हैं, 'वेदों, पुराणों, इतिहास एवं स्मृतिशास्त्रों में से हमने यही सिद्धान्त निश्चित किया है कि जीव, माया, ईश्वर, ब्रह्म तथा परमेश्वर, ये सभी अनादि हैं और माया तो जैसे पृथ्वी के स्थान पर है। इसी प्रकार पृथ्वी में रहनेवाले बीजों के स्थान पर जीव हैं तथा ईश्वर मेघ के स्थान पर हैं। परमेश्वर की इच्छा से पुरुषरूप ईश्वर का माया से सम्बंध होता है, तब जिस प्रकार मेघ के जल के सम्बंध से पृथ्वी में दबे हुए बीज अंकुरित हो जाते हैं। उसी तरह माया में अनादिकाल से बसे हुए जीवों का उदय हो जाता है। यद्यपि वहाँ से नवीन जीवों की उत्पत्ति नहीं होती। जैसे ईश्वर अनादि हैं, वैसे ही माया भी अनादि है। किन्तु वे जीव परमेश्वर के अंश नहीं हैं। वे तो अनादि जीव ही हैं। वे जब परमेश्वर की शरण में जाते हैं, तब माया को पार लगाते हैं और नारद-सनकादि के समान ब्रह्मरूप होकर भगवान के धाम में जाते हैं तथा वहाँ भगवान के पार्षद बनकर रहते हैं। इस प्रकार हमारा सिद्धान्त है।' (वच. ग. अं. 10)

'जब ब्रह्मांडों का प्रलय होता है, तब ये प्रकट भगवान एकमात्र ही रहते हैं और[25] उसके पश्चात् सृष्टि-रचना के समय में भी प्रकृति-पुरुष द्वारा अनन्तकोटि ब्रह्मांडों को ये ही भगवान उत्पन्न करते हैं।' (वच. ग. प्र. 56)

---

25. एक कहने का तात्पर्य है, सहजानंद स्वामी परब्रह्म तथा उनके साथ अक्षरमुक्त भी समझना चाहिए।

इस प्रकार उत्पत्ति और प्रलय तो भगवान स्वामिनारायण के अधीन हैं। श्रुति वाक्य प्रमाण के रूप में : **तदैक्षत। बहु स्यां प्रजायेयेति।** (छान्दोग्योपनिषद् : 6-2-3)

उत्पत्ति क्रम को श्रीजीमहाराज इस रीति से समझाते हैं: अक्षरातीत पुरुषोत्तम भगवान सृष्टिकाल में जब अक्षर के समक्ष दृष्टिपात् करते हैं तब उस अक्षर में से पुरुष (मुक्त) प्रकट होता है।

इसके पश्चात् वे पुरुषोत्तम अक्षर में प्रवेश करके पुरुष में प्रवेश करते हैं तथा पुरुषरूप होकर प्रकृति को प्रेरित करते हैं। इस प्रकार ज्यों-ज्यों पुरुषोत्तम का प्रवेश होता गया त्यों-त्यों सृष्टि की प्रवृत्ति हुई। तब प्रकृतिपुरुष से प्रधानपुरुष का आविर्भाव हुआ तथा उन प्रधानपुरुष से महत्तत्त्व, महत्तत्त्व से तीन प्रकार के अहंकार,[26] अहंकार से भूत, विषय, इन्द्रियाँ, अन्त:करण तथा देवता हुए।[27] उनसे विराट पुरुष तथा उनके नाभिकमल से ब्रह्मा हुए, उन ब्रह्मा से मरीच्यादिक प्रजापति, उनसे कश्यप प्रजापति, उनसे इन्द्रादि देवता और दैत्य उत्पन्न हुए तथा स्थावर-जंगम सृष्टि हुई ' (वच. ग. प्र. 41)

जब परब्रह्म परमात्मा सृष्टि-निर्माण की इच्छा करते हैं, तब वे अपने अनादि सेवक अक्षर पर दृष्टिपात करते हैं। अक्षर अपने स्वामी परब्रह्म पुरुषोत्तम की इच्छा को जानकर, पुरुष (अक्षरमुक्त) की ओर दृष्टिपात करता है और पुरुषोत्तम की इच्छा की जानकारी देकर अक्षरमुक्त को सृष्टि की उत्पत्ति के लिए प्रेरित करता है। इसलिए अक्षरात्मक मुक्तपुरुष परब्रह्म की इच्छा पूरी करने के लिए महामाया से संयोग करता है और माया में

26. सात्त्विक अहंकार से मन तथा इन्द्रियों के देवता उत्पन्न होते हैं और राजसी अहंकार से दस इन्द्रियाँ, बुद्धि तथा प्राणों की उत्पत्ति होती है। इसी प्रकार तामसी अहंकार से पंचभूत एवं पंच तन्मात्रा जन्म लेते हैं। (वच. ग. प्र. 12)

27. **देवता :** दिशा (दिग्पाल) वायु, सूर्य, वरुण, अश्विनीकुमार, अग्नि, इन्द्र, उपेन्द्र, प्रजापति (ब्रह्मा), मृत्यु (यम)
दस इन्द्रिया : श्रोत्र, त्वचा, चक्षु, रसना, ध्राण, (पंच ज्ञानेन्द्रिय), वाक् पाणि (हाथ) पाद, शिश्न, गुदा (पंच कर्मेन्द्रिय)।
पंचविषय (तन्मात्रा) : शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध
पंचभूत : आकाश, वायु, तेज, जल, पृथ्वी।

प्रलयकाल से जो अनन्त प्रधान (स्त्रियाँ) और पुरुष लीन पड़े हुए थे उन्हें व्यक्त (क्रियाशील) करता है। प्रधान (स्त्री) और पुरुष के द्वारा समस्त ब्रह्माण्ड की रचना करवाता है।

यह अक्षरात्मक पुरुष प्रकृति को प्रेरित करता है, अर्थात् पुरुष महामाया में अपनी शक्ति को प्रेरित करता है – माया अपनी साम्यावस्था से चलित हो जाती है – अपनी साम्यावस्था भंग करती है। पुरुष और प्रकृति के संयोग से प्रधान और पुरुष के अनेक जोड़े अनन्त ब्रह्माण्ड का सर्जन करने के लिए उत्पन्न होते हैं। इस रीति से, पुरुषोत्तम का जिस-जिस में प्रवेश होता गया, वहाँ-वहाँ उनकी अन्तर्यामी शक्ति के द्वारा सृष्टि की प्रवृत्ति होती गई।

अक्षरात्मक पुरुष अथवा अक्षरधाम का ब्रह्मरूप मुक्त तो 'वे अक्षरात्मक पुरुष तो निरन्न हैं, मुक्त हैं तथा ब्रह्म हैं और माया के कारण है। यद्यपि वे माया में लोमरूप से रहते हैं, फिर भी उन्हें मायाजन्य बाधा नहीं लगती। माया में उन्हें भोग की इच्छा भी नहीं होती। वे स्वयं ब्रह्मसुख से सुखी एवं पूर्णकाम हैं। ' (वच. ग. म. 31)

अनेक शास्त्रों में इस पुरुष को पुरुषोत्तम कहा गया है। अत: यह समझना कठिन हो जाता है कि परब्रह्म पुरुषोत्तम, पुरुष से कैसे भिन्न है ? परिणामस्वरूप पुरुषोत्तम के विषय में भ्रम उत्पन्न होता है। किन्तु वचनामृत में श्रीहरि स्पष्ट कहते हैं, 'जितना इस जीव तथा वैराजपुरुषरूपी ईश्वर में अन्तर है। जितना ईश्वर तथा अक्षरात्मक पुरुष में अन्तर है, वैसे ही उस पुरुष एवं पुरुषोत्तम वासुदेव भगवान में उतना ही भारी अन्तर रहता है। पुरुषोत्तम वासुदेव तो सर्व के स्वामी हैं। जबकि ऐसे अक्षरात्मक ब्रह्मरूप पुरुष[28] अनेक हैं; जो वासुदेव के चरणारविंदों की उपासना करते हैं तथा स्तुति करते हैं। इस प्रकार पुरुषोत्तम, पुरुष, ईश्वर, जीव और माया ये पाँच भेद अनादि हैं। इस प्रकार की वार्ता हमने कईबार की है, परन्तु कोई भक्त उसका मनन करके अपने अन्त:करण में उस पर दृढ़तापूर्वक निश्चय नहीं करते, अत: शास्त्रों के विभिन्न प्रकार के शब्द सुनकर उनकी समझ में स्थिरता नहीं रहती। (वच. ग. म. 31)

इस प्रकार सृष्टिक्रम के अनुसार श्रीहरि स्वयं परब्रह्म पुरुषोत्तम,

28. अक्षरात्मक पुरुष = अक्षर-मुक्त, ब्रह्मरूप मुक्त।

सबके प्रेरक, अंतर्यामी और सृष्टि रचना के मूल कारण हैं। इस विषय को स्पष्ट करती हुई श्रीहरि की वाणी सुनकर सद्‌गुरु प्रेमानंद स्वामी ने एक कीर्तन की रचना की है :

'जीव ईश्वर तणो रे, माया काल पुरुष प्रधान,
सौने वश करुं रे, सौनो प्रेरक हुं भगवान ।
अगणित विश्वनी रे, उत्पत्ति पालन प्रलय थाय,
मारी मरजी विना रे, कोईथी तरणुं नव तोडाय ।'

(आज मारे ओरडे – कीर्तन से)

अर्थात् जीव, ईश्वर, माया, काल, पुरुष, प्रधान का प्रेरक मैं हूँ, मैं सबका नियंता हूँ, मैं भगवान हूँ। मैं असंख्य विश्वों की उत्पति, पालन और प्रलय करनेवाला हूँ। मेरी इच्छा के बिना कोई एक तिनका भी नहीं तोड़ सकता।

परब्रह्म पुरुषोत्तम नारायण – एक एवं अद्वितीय

उपर्युक्त विवरण से हमें पता चलता है कि परब्रह्म पुरुषोत्तम नारायण सर्वोपरि, सर्व अवतारों के अवतारी, सर्वकारणों के मूल कारण और सबके नियन्ता हैं, और वे भगवान स्वामिनारायण हैं। वे एक और अद्वितीय हैं। अक्षरपर्यन्त कोई भी परब्रह्म बनने की सामर्थ्य नहीं रखता। कुछ शास्त्र प्रमाणों पर ध्यान दें :

● श्रुति प्रमाण : '**एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म**' भगवान एक ही हैं और अद्वितीय हैं।

● इस सिद्धांत को स्पष्ट करते हुए श्रीहरि कहते हैं, 'उन नारायण के समान तो एक ही नारायण हैं, परन्तु उनके जैसा दूसरा कोई भी नहीं हो सकता।' (वच. लो. 13, कारि. 8, कारि. 10)

● 'भगवान के सदृश तो केवल भगवान ही है। और भगवान का भजन करके अनेक भक्त उनके साधर्म्य को प्राप्त हुए हैं, फिर भी वे भगवान के समान तो नहीं हो सकते। ' (वच. ग. अं. 39)

● 'भगवान का स्वरूप भी एक है तथा भगवान अतिसमर्थ हैं और उनके जैसा होने के लिए अक्षरपर्यन्त कोई भी समर्थ नहीं हो पाता, यह सिद्धान्त हैं।' (वच. लो. 4)

● **न तत्समश्चाप्यधिकश्च दृश्यते।**

अर्थात् 'कोई भी परब्रह्म के समान भी नहीं हो सकता या उससे अधिक भी नहीं हो सकता !' (श्वे. उप. 6/8 तथा भवसंभवसंहिता उपनिषद 2/24)

प्रचलित प्रसंग

भगवान स्वामिनारायण द्वारा प्रसंगोपात्त समझाई गई अपनी सर्वोपरिता

(1) उत्तरप्रदेश से शीतलदास नामक एक मुमुक्षु ब्राह्मण रामानन्द स्वामी की ख्याति सुनकर उनके दर्शन करने के लिए सौराष्ट्र आ पहुँचा। लेकिन रामानंद स्वामी कुछ दिन पूर्व ही अंतर्धान हो गए थे। जब उसने रामानंद स्वामी के परलोकगमन का समाचार सुना तो वह बहुत निराश हुआ। श्रीजीमहाराज ने वापस लौटनेवाले शीतलदास को आश्वासन देकर अपने सांनिध्य में रोक लिया और कहा: 'तुम्हें रामानंद स्वामी के दर्शन अवश्य होगें!'

रामानंद स्वामी की उत्तर क्रिया के तेरह दिन के बाद शीतलदास सभा में बैठे हुए थे। श्रीहरि ने उनको 'स्वामिनारायण' मंत्र जपने के लिए आज्ञा दी। शीतलदास मंत्रजाप करने लगे। थोड़ी देर में ही उन्हें दिव्य समाधि लग गई। समाधि में उनको अक्षरधाम का दर्शन हुआ। उन्होंने देखा कि रामानंद स्वामी और सभी अवतार श्रीजीमहाराज की स्तुति कर रहे हैं। शीतलदास ने भी श्रीजीमहाराज की पूजा की। किन्तु उनकी इच्छा तो थी कि अक्षरधाम के अनन्त मुक्तों की पूजा करूँ।

लेकिन वह कैसे संभव हो सकता था? श्रीहरि ने कहा, 'शीतलदास, तुम संकल्प करो कि इन अवतारों में से कोई एक या फिर रामानंद स्वामी स्वयं पुरुषोत्तम हों तो मेरे अनन्त रूप हो जाएँ।' शीतलदास ने तुरन्त संकल्प किया, पर अनन्त स्वरूप नहीं हुए । तब महाराज ने कहा:

'अब तुम ऐसा संकल्प करो कि यह सहजानंद स्वामी पुरुषोत्तम नारायण हों, तो मेरे अनंत स्वरूप हो जाएँ।' ऐसा संकल्प करते ही शीतलदास के अनंत स्वरूप हुए । शीतलदास ने एक साथ अनंत मुक्तों की पूजा की। समाधि छूटने पर शीतलदास ने महाराज की बहुत स्तुति की।

उन्हें यह निश्चय हो गया कि महाराज ही सर्वोपरि भगवान हैं। उनकी सांसारिक आसक्ति मिट गई और महाराज से भागवती दीक्षा अंगीकार की। महाराज ने उनका नामाभिधान किया : व्यापकानंद स्वामी!

'हरिलीलामृत' में भी इसी कारण कहा गया है कि:

'सर्व अवतार एमां समाय, पोते कोईमां लीन न थाय,
एवी वात कही जेह वार, थया लीन बधा अवतार,
सरिताओ मळे ते सागरमां, मळ्या अवतार सौ हरिवरमां।

(हरिलीलामृत : 5-3)

अर्थात् सभी अवतार सहजानंद स्वामी में समा जाते हैं। किन्तु स्वयं किसी में नहीं समाते। जब यह बात कही तभी सब अवतार सहजानंद स्वामी में समा गए। जैसे सभी नदियाँ सागर में मिल जाती हैं, वैसे ही सारे अवतार इनमें समा जाते हैं!

❀

(2) श्रीहरि के अनन्य भक्त अगतराई के पर्वतभाई थे। वे एक बार खेत में हल चला रहे थे। उनकी वृत्ति श्रीहरि के साथ एकाकार हो गई, उनकी तेजोमय मूर्ति का उन्हें दर्शन हुआ। श्रीहरि ने एक के बाद एक चौबीस अवतारों के दर्शन कराए। अन्त में पर्वतभाई ने देखा कि सभी अवतार उनकी मूर्ति में समा गए। श्रीहरि का यह अप्रतिम ऐश्वर्य है कि वे स्वयं सर्व समर्थ और सर्वश्रेष्ठ हैं, तभी तो दूसरों को अपने में लीन कर लेते हैं। यह श्रीहरि की सर्वोपरिता ही घोषित करता है।

ज्ञानी-अज्ञानी, भक्त-अभक्त, पशु-पक्षी, जीव-जन्तु, मछली-मगर आदि सबको श्रीहरि समाधि लगवा देते थे। अन्य संप्रदाय के हज़ारों अनुयायियों को भी श्रीहरि ने समाधि में ही अपने-अपने इष्टदेवों के दर्शन कराए। सभी ने देखा कि अवतारमात्र उनकी मूर्ति में लीन हो जाते थे! श्रीहरि की ऐसी महिमा से अभिभूत होकर देशभर के मुमुक्षु उनकी शरण में अपना सर्वस्व कुर्बान करने के लिए आते रहते थे।

वचनामृत पंचाला 6 का भावार्थ यही है कि जैसे श्रीकृष्ण भगवान ने पहले प्रकट हो चूके अवतारों का अथवा अन्य मूर्तियों का एश्वर्य अपने स्वरूप में दिखाया था। वही कारण है कि शास्त्रों ने उनको सर्वोपरि कहा था। उसी

प्रकार श्रीहरि ने पहले प्रकट हो चूके सभी अवतारों को (श्रीकृष्ण सहित) अपने स्वरूप में लीन करने का एश्वर्य दिखाया था। अतः यह अवतार सर्वोत्कृष्ट है ऐसे पर भाव के शब्द श्रीहरि ने अपने लिए प्रयुक्त किए हैं।

सद्‌गुरु गोपालानंद स्वामी ने श्रीहरि के तेरह ऐश्वर्यों का वर्णन करते हुए लिखा है : 'धर्मसुत (धर्मदेव के पुत्र-श्रीहरि) का विशेष लक्षण यह है कि वे अनेक मनुष्यों को अपनी मूर्ति में लीन होते हुए पूर्व के अन्य अवतारों के दर्शन करवाते हैं किन्तु स्वयं अन्य अवतारों में लीन नहीं होते ।'[29]

❀

(3) रामानंद स्वामी ने देहलीला समाप्त की, पश्चात् श्रीहरि ने लोज और मांगरोल गाँवों में अनेक अवसर पर अपने ऐश्वर्य को प्रकट किया था। इसमें 'समाधि प्रकरण' बहुत प्रसिद्ध है। श्रीहरि के पट्टाभिषेक के बाद कालवाणी गाँव के भक्त भीमभाई ने श्रीहरि से प्रार्थना की: 'हे महाराज ! जब कोई नया राजा राज्यधुरा संभालता है, उस दिन सारे बन्दियों को बन्दीगृह से मुक्त कर देते हैं और आप तो सर्व अवतारों के अवतारी हैं। आपने आज धर्मधुरा धारण की है। तो जो जीव अपने पापों के कारण नरक भोग रहे हैं उन जीवों को मुक्त करने की कृपा करें !'

भीमभाई की प्रार्थना से द्रवित होकर श्रीजीमहाराज ने तुरंत स्वरूपानंद स्वामी को समाधि लगवा दी और उनको यमपुरी में भेजे। जब स्वामी ने नरक में पड़े जीवों को दुःसह यातना भोगते देखा तो वे काँप गए। दयार्द्र होकर उन्होंने कष्ट भोगते जीवों से कहा, 'स्वामिनारायण' नाम का जप करें ताकि आप जल्दी से दुःख से मुक्त हों! सबने दिव्य मंत्र का जप सभी जीवों को तत्काल ही मुक्ति मिल गई। सभी ने चतुर्भुज रूप धारण किया और भूमापुरुष के लोक में उनकी गति हो गई। इस प्रकार, श्रीहरि ने अपने अपार ऐश्वर्य का परिचय परमहंसों और भक्तों के द्वारा दिया। इस घटना को लेकर सद्‌गुरु मुक्तानंद स्वामी ने कीर्तन की रचना की :-

- *'पोते परब्रह्म रे, स्वामी सहजानन्द ,*

  नारायण प्रबळ प्रताप छे ।

---

29. *संदर्शयत् पूर्वनिजावताराँल्लीनान् स्वमूर्तौ शतशो मनुष्यान् ।*
लीनो न तेषु स्वयम् अद्‌भुतन्तत् त्रयोदशं धर्मसुतस्य लक्ष्म ॥

अर्थात् सहजानंद स्वामी स्वयं साक्षात् परब्रह्म है और वे अत्यंत प्रतापी है।

- *स्वामिनारायण मुखे उच्चरे, तेने जन्ममरण जमनो भय जाय,*
  सरवे नरक कुंड खाली थया, भूख्या जमगण रे कर घसी पस्ताय ।

अर्थात् जो स्वामिनारायण का स्मरण मात्र करता है उसका जन्म मरण का भय तथा यमराज का भय दूर हो जाता है। स्वामिनारायण का महामंत्र से प्रताप से नरक के सभी कुंड खाली हो गए थे और यमदूत हाथ मलते ही रह गए थे।

- *'सहजानंद स्वामी रे, न प्रगटत आ समे रे ,*
  प्राणी कोई पामत नहीं भवपार..... '

अर्थात् यदि सहजानंद स्वामी ने इस पृथ्वी पर इसी उचित समय पर अवतार न लिया होता तो कोई भी जीव जन्म-मरण के चक्र से कैसे छूट पाता ?

इसी भाव को निष्कुलानंद स्वामी ने इस प्रकार व्यक्त किया :

'जीव संयमनीए (यमपुरी में) शीद जाय रे,
प्रगट प्रभु छे पृथ्वी मांय रे... '
बेसे राजा गादी पर कोय रे, छोडे बंधिवानना बंध सोय रे,
तेम बंधथी छोड्या बहु जन रे, पोते प्रगट श्री भगवन रे,
महामोटो प्रताप प्रगटावी रे, रीत नौतम न्यारी चलावी रे,
जेने उपर नहीं बीजो कोय रे, ते तो जेम करे तेम होय रे,
सौना नाथ नियंता स्वामी रे, सौ धामतणा पण धामी रे,
ते तो अढळक आज ढळिया रे, थया सुखी जन जेने मळिया रे ।

अर्थात् 'जब भगवान इस पृथ्वी पर मनुष्यरूप में प्रकट हुए, तो जीव यमपुरी में क्यों रहे ? जब कोई नया राजा राज्यधुरा संभालता है, तब सभी बंदियों को बंदीगृह से छोड़ दिए जाते है। उसी तरह, प्रकट भगवान ने अनंत जीवों को मुक्त कर दिया। अपनी असीम महिमा को प्रकट कर, उन्होंने नई रीत का प्रवर्तन किया। वे सर्वोपरि हैं। वे जो करते हैं वह होता है। वे सबके शासक हैं और सभी धामों के स्वामी हैं। श्रीहरि अब अपनी कृपा की वर्षा कर रहे हैं, जो भी उनसे मिला उसने दिव्य आनन्द की अनुभूति की है।'

❀

(4) श्रीहरि ने जब गढ़डा में 'सत्संगिजीवन' ग्रंथ लिखवाया, तब उपासना संबंधी एक गहन चर्चा हुई थी। नित्यानंद स्वामी, प्रतिपादन कर रहे थे कि श्रीहरि सर्वोपरि, सर्व अवतारों के अवतारी, सर्व कारणों के कारण हैं। लेकिन अन्य परमहंस उनको अवतारों के समान प्रतिपादित करते रहे। तब नित्यानंद स्वामी ने दृढ़तापूर्वक प्रतिपादन किया कि श्रीहरि में सभी अवतार लीन होते हैं तथा इनका ऐश्वर्य असीम है। उन्होंने स्पष्ट किया कि श्रीहरि को पूर्व अवतारों के तुल्य कहना उनके अलौकिक ऐश्वर्य को नकारना है। लेकिन श्रीहरि ने ही अन्य परमहंसों के तर्कों में अपना सूर मिला दिया और कहा, 'मैं तो अवतारों के समान ही हूँ। इससे अधिक कुछ नहीं लिखना चाहिए।' परंतु नित्यानंद स्वामी भी दृढ़ता के साथ सिद्धांत की डोर पर अड़िग रहे! परिणामतः श्रीहरि ने नित्यानंद स्वामी को संतमंडल से बहिष्कृत कर दिया और सात दिन तक उनके साथ बोले भी नहीं! नित्यानंद स्वामी भी अपनी निष्ठा में चट्टान की तरह अचल रहे! श्रीहरि बहुत प्रसन्न हुए। अपने कंठ से हार निकालकर स्वामी को पहनाया और कहा, 'सच्चे उपासक हो तो नित्यानंद स्वामी जैसे हो। यद्यपि मैंने अन्य परमहंसों की हाँ में हाँ मिलाई और इनका तिरस्कार भी किया तो भी इन्होंने अपनी सिद्धांतनिष्ठा को छोड़ा नहीं!' यह प्रसंग हमें बोध देता है कि श्रीहरि सर्वोपरि भगवान ही है।

इस प्रसंग के साक्षी होते हुए भी बड़े-बड़े कुछेक परमहंस ज़ाहिर में श्रीहरि को पुरुषोत्तम या सर्वोपरि कहने में हिचकिचाते थे। उनका मानना था कि मनुष्यरूप में भगवानस्वरूप का और सर्वोपरिता का आरोपण करना समाज में उचित नहीं लगेगा तथा शास्त्रों में भी इसका अनुमोदन नहीं मिलता है, तो इस बात की लोक-मान्यता भी कैसे मिलेगी ? इसलिए 'सत्संगिजीवन' ग्रंथ में ग्रंथकार ने श्रीहरि को आग्रहपूर्वक श्रीकृष्ण के समान ही लिखे हैं। **इसी कारण श्रीहरि ने कहा था कि भविष्य में हमारे दिव्य ऐश्वर्यों का वर्णन शास्त्रों में किया जाएगा और हमारी मूर्तियों की भी स्थापना की जाएगी।**

अनेक अवसरों पर श्रीहरि ने कहा है, 'यदि मैंने गुणातीतानंद स्वामी और निष्कुलानंद स्वामी से संस्कृत का अध्ययन कराया होता, तो दोनों,

सत्संगियों में इस सिद्धान्त की व्यापक समझ शास्त्रोक्त रीति से दृढ़ीभूत किया करते। दीनानाथ भट्ट जैसे विद्वानों की कोई आवश्यकता न होती और हमारी महिमा और ऐश्वर्य जैसा है वैसा यथार्थ रूप से लिखा जाता।'

❀

(5) वन विचरण के अंत में श्रीहरि, नीलकंठ वर्णी के रूप में, लोजपुर पधारे। उस समय उनकी आयु उन्नीस साल की थी। रामानंद स्वामी उस समय भुजनगर पधारे थे। वे वर्णी की महानता को जानते थे। इसलिए उन्होंने अपने सभी शिष्यों को आदेश दिया कि वे लोजपुर जाकर वर्णी के दर्शन करें। शेखपाट के लालजी सुथार (निष्कुलानंद स्वामी) को अपने गुरु रामानंद स्वामी से अपार स्नेह था। उनकी गुरुनिष्ठा ने स्वामी के सिवा किसी और को महान मानने से रोक लिया! अतः वे लोजपुर न जाकर भुज पहुँचे। रामानंद स्वामी ने चकित होकर उनसे पूछा : 'मेरी आज्ञा की अवज्ञा कर तुम यहाँ क्यों आए? वर्णी बहुत महान हैं, दर्शन करने योग्य हैं। तुम वहीं पर जाओ!'

लालजी भक्त ने नम्रभाव से पूछा, 'स्वामी ये वर्णी कितने महान हैं? क्या वे आपके समान महान है?'

रामानंद स्वामी ने कहा : 'वर्णी तो हम से भी महान हैं। ये वर्णी तो सब अवतारों के कारण, परात्पर, अप्राकृत गुण ऐश्वर्यशाली पुरुषोत्तम स्वयं हैं।' इस प्रकार वर्णी अनंत अपार महिमा जानकर लालजी सुथार के आश्चर्य की सीमा न रही ! इस प्रसंग को 'हरिलीलामृत' में भी वर्णित किया गया है। (हरिलीलामृत : 4-3)

रामानंदजी ने उत्तर दिया : 'ध्यान से सुनो, वे सब अवतारों के मूलकारण हैं। इससे अधिक और क्या कहें? ऐसे पुरुषोत्तम भगवान के दर्शन छोड़कर तुम यहाँ कच्छ में क्यों आए?'

❀

(6) एक बार श्रीहरि ने मार्मिकरूप से परमहंसों से कहा : 'आप गाँव-गाँव विचरण करते हैं, तो लोगों को मेरे स्वरूप की बात तो करते ही होंगे। अब से सबको यही समझाना कि मैं (सहजानंद स्वामी) दत्तात्रेय, कपिल, नारद, शुक, सनकादिक जैसा हूँ। किन्तु किसी भी प्रकार ऐसा मत

कहना कि मैं उनसे भी महान हूँ।' परमहंसों ने भोलेपन से कहा, 'जैसी आपकी आज्ञा, महाराज!' इतना कहते हुए सब संतवृंद गाँव-गाँव घूमने निकल गए। विभिन्न प्रदेशों में विचरण करके जब गढ़पुर लौटे, तब श्रीहरि ने उनसे पूछा, 'आपने मेरे स्वरूप की पहचान किस प्रकार दी?' परमहंसों ने उत्तर दिया, 'हे महाराज! हमने कहा कि आप दत्तात्रेय, कपिल, नारद, शुक, सनकादिक जैसे महान पुरुष हैं।'

श्रीहरि उत्तर सुनते ही उदास हो गए और कहने लगे, 'आप सब कबूतर के कबूतर ही रहे अर्थात् (बहुत भोले ही रहे !)। हमारे साथ आप सब इतने समय से रहते हैं, हमारे ऐश्वर्यों को देखा और जाना है, फिर भी हमारा यथार्थ परिचय नहीं दे सके? मूली खाने के बाद दूसरे कई स्वादिष्ट पकवान खाए हों, तो भी डकार तो मूली की ही आती है। आपको हमारे स्वरूप के महिमा की बातों की डकार भी नहीं आई ? मैं तो सर्व अवतारों का अवतारी, सर्वोपरि पुरुषोत्तम हूँ। यह बात आप सब समझें और सभी को समझाएँ।' तब परमहंसों ने हाथ जोड़कर कहा, 'हे महाराज ! हम आपकी सर्वोपरिता समझेंगे और यही समझाएँगे।'

❀

(7) गढ़पुर में एक दीन लाडुबाई, जीवुबाई आदि भक्तों ने श्रीहरि से कहा, 'हे महाराज ! हमारे अति धन्य भाग्य है कि गोपी-गोपाल को जिस भगवान के स्वरूप की प्राप्ति हुई थी वही हमें हुई है।'

यह सुनकर श्रीहरि ने कहा, 'गोपी-गोपालों को जिस भगवान की प्राप्ति हुई थी, उस भगवान को तो मेरी मूर्ति के दर्शन तक नहीं हुए। आप सभी को तो उन लोगों से अति अधिक प्राप्ति हुई है।'

(8) अहमदाबाद में श्री नरनारायण देव की मूर्तिप्रतिष्ठा के अवसर पर श्रीहरि ने मुक्तानंद स्वामी से कहा, 'इस भरतखंड के राजा श्री नरनारायण हैं। हमने उनकी मूर्ति की प्रतिष्ठा की है। नरनारायण देव श्री बदरिकाश्रम में रहते हैं तथा श्री लक्ष्मीनारायण वैकुंठ में रहते हैं। वे सब अन्य देवों सहित प्रकट पुरुषोत्तम द्विभुज भगवान (स्वामिनारायण) की उपासना और सेवा करते हैं।' इस तरह से श्रीहरि ने अपने पुरुषोत्तमरूप की बात कही।

❀

(9) यद्यपि श्रीहरि सौराष्ट्र प्रदेश में रहते थे, किन्तु उनकी प्रसिद्धि सारे भारत में फैली हुई थी। लोग उन्हें इस जीवन में ही मुक्ति देनेवाले जीवनमुक्त कहते थे। 'जीवनमुक्ता' शब्दोच्चारमात्र से तेज फैल जाता था। लोग विस्मित रह जाते थे कि जब मात्र नाम इतना प्रभावशाली है, तो वह स्वरूप कितना आश्चर्यजनक होगा! देश के कोने-कोने से अनेक मुमुक्षु आकर्षित होते हुए सौराष्ट्र की ओर आने लगे और श्रीहरि के आश्रित होने लगे। इनमें से कुछेक तो अपने पंथ और आश्रमों के मंडलेश्वर थे। अपने शिष्यों के साथ उन्होंने श्रीजीमहाराज का आश्रय ग्रहण किया।

जब श्रीहरि की मात्र 23 वर्ष की आयु थी, तब उन्होंने एक ही रात में अपनी आयु से बड़े, विद्वान, तेजस्वी और तपस्वी पाँच सौ त्यागियों को 'परमहंस' की दीक्षा दी। यह घटना उनके दिव्य अलौकिक व्यक्तित्व और उनकी असीम ऊर्जा की द्योतक है। ये परमहंस कोई साधारण मनुष्य नहीं थे। साहित्य, संगीत, शिल्प, चित्र, नृत्य आदि अनेक कलाओं में पारंगत विद्वान थे। साधन और सम्पत्ति से सम्पन्न थे। इस युवा में ऐसा क्या आकर्षण था कि समाज के ऐसे पुरुषों ने अपना घर-परिवार, धन-दौलत, पद-मान, जातीय अभिमान सब छोड़ श्रीहरि के चरणकमलों का आश्रय लिया? यह एकमात्र चमत्कार ही उनकी सर्वोपरिता समझने के लिए पर्याप्त है।

इन परमहंसों ने श्रीहरि के साथ रहकर उनके स्वरूप की सर्वोपरि निष्ठा दृढ़ की। श्रीहरि ने एक बार उनकी परीक्षा लेने के लिए पूछा, 'हे परमहंसो! पहले जो जो अवतार हो गए हैं, उन्होंने अनेक असुरों का संहार किया था और अनेक अद्‌भुत कार्य किए थे। मैं भगवान कहलाऊँ, ऐसा तो मैंने कुछ भी नहीं किया है। मैंने तो समुद्र का मंथन भी नहीं किया है और न ही पृथ्वी को क्षत्रिय-विहीन किया है, न ही रावण को मारा है, न ही समुद्र पर पुल बाँधा है, न ही गोवर्धन उठाया है और न ही जरासंध को मारा है। हमने ऐसा कोई पराक्रम किया नहीं है, फिर भी, आप लोग हमें भगवान क्यों कहते हैं? आपकी इसमें अवश्य कोई भूल है।'

किन्तु परमहंस शब्दजाल में फँसने वाले नहीं थे। उनका निश्चय अडिग था। उन्होंने कहा, 'हे महाराज! यदि आकाश कहे कि मैं आकाश नहीं हूँ, सूर्य कहे कि मैं सूर्य नहीं हूँ तो उनका कौन विश्वास करेगा? भगवान की तो

अवधूत जाति कहलाती है। वह चाहे जो कहें, लेकिन हम भूल-भुलैयाँ में पड़नेवाले नहीं हैं। आपने भले ही असुरों का संहार न किया हो। असुर तो अपने काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या, असूया, अहंकार आदि विकारों से मरे हुए ही थे। ये दोष तो ऐसे हैं कि स्वर्गलोक, विधिलोक या वैकुंठ से भी जीव को गिरा देते हैं। आपने हमारे इन दोषों को निर्मूल कर दिया है।'

'माटे ऐने दिये जे विदारी ते तो अवतारना अवतारी।' (भ. चि. 105)

'वे जो विकारों को निर्मूल कर सकते हैं, वे सभी अवतारों के अवतारी है। आपने दैवी जीवों के साथ-साथ आसुरी जीवों को भी तार दिया। आपने भले ही समुद्र पर सेतु न बाँधा हो, परन्तु भवसागर पर सेतु बाँधकर अक्षरधाम का रास्ता सरल कर दिया। आपने हमें माया के बंधन से मुक्त करके अक्षरधाम की प्राप्ति कराई!' परमहंसों के ऐसे दृढ़ निष्ठामय वचनों को सुनकर श्रीहरि बहुत प्रसन्न हुए।' (भ. चिं. 104, 105)

अक्षरब्रह्म गुणातीतानंद स्वामी के शब्दों में भगवान स्वामिनारायण की सर्वोपरिता

गुणातीतानंद स्वामी के गुणातीत ज्ञान से निकले शब्दों ने भगवान स्वामिनायायण की सर्वोपरि निष्ठा को समझने और दृढ़ करने में सत्संग समाज में बहुत अधिक योगदान दिया है। मुमुक्षुओं को सर्वोपरि निष्ठा दृढ़ हो यह अनिवार्य है। कारण यह है कि इसकी निष्ठा के बिना माया के घोर अंधकार को पार नहीं किया जा सकता और अक्षरधाम की ओर गति नहीं हो सकती। इसीलिए उमरेठ में श्रीहरि सद्‌गुरु गोपालानंद स्वामी के स्वप्न में प्रकट हुए और उनसे कहा, 'हमारे पुरुषोत्तमस्वरूप का ज्ञान फैलाओ, नहीं तो इसी देह में हजार वर्षों तक रखूँगा।'

❀

(1) सद्‌गुरु गोपालानंद स्वामी जब अवतार और अवतारी का भेद समझाते, तब आत्मानंद स्वामी जो उनसे आयु में बड़े थे, कहते, 'छोकरे, भगवान की तुलना न कर।'

गोपालानंद स्वामी हँसकर कहते, 'स्वामी! जो मैं कह रहा हूँ वह आप आज नहीं समझेंगे, किन्तु भविष्य में कोई साधु आपको समझाएगा।'

जब आत्मानंद स्वामी 116 वर्ष की आयु के हुए और फिर भी उनके आयुष्य का अंत न आया, तो उन्हें बहुत आश्चर्य हुआ। उन्हें न तो अधिक जीने की इच्छा है, न ही कोई वासना, फिर भी महाराज आकर मुझे अपने अक्षरधाम में क्यों नहीं ले जाते?'

गुणातीतानंद स्वामी ने इस संशय का निवारण किया और श्रीहरि का स्मरण दिलाया, जिसमें श्रीहरि ने स्वयं व्यक्तिगतरूप से आत्मानंद स्वामी को अपनी सर्वोपरिता के विषय में कहा था। गुणातीतानंद स्वामी ने सर्वोपरि उपासना की समझ के महत्त्व को बल देकर समझाया। जैसे ही आत्मानंद स्वामी में उपासना ज्ञान की कमी दूर हुई, श्रीहरि उन्हें अक्षरधाम ले गए।

बड़े-बड़े परमहंसों से गुणातीतानंद स्वामी उपासना की स्पष्टता की चर्चा किया करते थे।

❀

(2) सद्‌गुरु मुक्तानंद स्वामी को स्नान करते हुए विभिन्न तीर्थों के नाम बोलने की आदत थी। गुणातीतानंद स्वामी ने उनके शिष्य शांतानंद स्वामी द्वारा कहलवाया, '**स्वामिनारायण नाम सर्वोपरि है, इसमें ही सारे तीर्थ आ जाते हैं।** मुक्तानंद स्वामी को अपनी भूल समझ में आई और उन्होंने वह भूल सुधार ली।

(3) सद्‌गुरु प्रेमानंद स्वामी जब जूनागढ़ मंदिर में निवास कर रहे थे, तब अक्सर नागरभक्तों की संगीत मंड़ली के साथ कृष्णलीला के पद सुनाते रहते। गुणातीतानंदस्वामी यह सुनकर उनको बार-बार कहते कि 'स्वामी, अब कुछ दिन समय के बाद देह तो नही रहेगी, अतः कुंजगली की लीलाओं को छोड़कर श्रीजीलीला में मन एकाग्र कीजिए।'

❀

(4) सद्‌गुरु शुकानंद स्वामी को गुणातीतानंद स्वामी ने वचनामृत ग. म. 9 समझाया, तब उन्हें महाराज के स्वरूप की सर्वोपरि निष्ठा हुई। शुकानंद स्वामी ने कहा, '**मैंने स्वयं यह वचनामृत लिखा है, खोजा भी मैंने ही था (संशोधित भी मैंने ही किया था) किन्तु इसका रहस्य तो आज ही समझ में आया है।**'

❀

(5) भगवान स्वामिनारायण के सर्वोपरि स्वरूप के प्रवर्तन के ध्येय में गुणातीतानंद स्वामी को शास्त्रों की रूढ़िवादिता कभी बाधक नहीं बनी।

शास्त्र के रूढ़िवादियों को वे कहते, 'जीव दूसरे किसी स्थान पर अटकता नहीं हैं किन्तु श्रीहरि को पुरुषोत्तम कहने में अटकता है।' बड़े-बड़े परमहंसों ने श्रीहरि के लीला चरित्रों को देखा और सुना था, फिर भी वे उनकी सच्ची महिमा लिखने में अटकते थे। इसके बाद रघुवीरजी महाराज की गद्दी पर चम्पा के तीन फूल रखकर बोले कि कई तो इस फूल तक पहुँचते हैं, लेकिन कोई इस फूल तक नहीं पहुँचता । इस प्रकार मर्म में बात कही, बाद में तीसरा फूल स्वामी ने उठाकर अचिन्त्यानन्द ब्रह्मचारी को दिया और श्रीहरि की सर्वोपरि महिमा प्रकट करे, ऐसा ग्रंथ लिखने की आज्ञा दी।

गुणातीतानंद स्वामी की आज्ञा से अचिंत्यानंद स्वामी ने 'श्रीहरिलीलाकल्पतरु' नामक अद्‌भुत ग्रंथ की रचना की; जिसमें महाराज की अपार महिमा का प्रतिपादन किया। (स्वा. वा. 3/19)

इस प्रकार गुणातीतानंद स्वामी ने न केवल अपनी बातों से किन्तु अपने शिष्यों द्वारा भी श्रीहरि की सर्वोपरिता का प्रवर्तन करवाया !

ऐसे अनेक प्रसंग संप्रदाय में प्रचलित हैं, जो बड़े-बड़े सद्‌गुरुओं ने लिखे हैं। कितने ही प्रसंग गुरुपरम्परा से विख्यात हुए हैं। यहाँ स्थान की सीमा के कारण थोड़े ही प्रसंग से संतोष मान लेते हैं। जिज्ञासु मुमुक्षु को इन विचारों की पुष्टि के लिए या शुद्ध समझ की दृढ़ता करने के लिए संप्रदाय के अन्य ग्रंथों का अध्ययन करना चाहिए।

कुछ प्रश्नोत्तर

भगवान स्वामिनारायण को सर्वोपरि समझने में कुछ अन्य प्रश्न उपस्थित होते हैं।

प्रश्न : भगवान स्वामिनारायण सर्वोपरि हैं। फिर भी वचनामृत एवं संप्रदाय के कुछ ग्रंथों में तथा परमहंसों के कीर्तनों में उनको श्रीकृष्ण के समान लिखा गया है, ऐसे क्यों ?

उत्तर : श्रीहरि के समय में अनेक मतपंथ-शक्तिपंथ, असत् संप्रदाय,

गुरु, वहम,जंत्र, मंत्र आदि का प्रभाव समाज के मानस पर अत्यंत तीव्ररूप में था। वे लोग इस नए संप्रदाय का जमकर विरोध करते थे। ऐसे समय में मनुष्य शरीरधारी श्रीहरि स्वयं को परमात्मा का स्वरूप कहे तो लोगों के मन में उस बात की प्रतीति आना अत्यंत दुष्कर था। अतः पथ्य होने पर ही औषधि दी जाती है, उसी न्याय से श्रीहरि ने स्वयं को पहले सत्पुरुष कहा, तत्पश्तात् अवतारों के समान कहा अंत में अपने सर्वातारी स्वरूप की महिमा यथार्थ रूप में कहने लगे। परमहंसों में भी अपने हृदय में हुई प्रतीति को विभिन्न रूप से गाया था।

मुक्तानंद स्वामी ने पहेले श्रीहरि को सद्‌गुरु ही माना था। तत्पश्तात् उन्होंने गाया कि 'छांडी के श्रीकृष्ण देव' अंत में उन्होंने श्रीहरि का पुरुषोत्तम रूप में पहचान, और गाया कि, *'माईरी मैंने पुरुषोत्तम वर पायो'* तथा *'पिया पाया तो फिर क्या सोना ?'*

श्रीहरि ने प्रारंभ में प्रवाहीमार्ग ग्रहण किया था, उन्होंने जहाँ भी जिन देवों की उपासना का प्राधान्य था, वहाँ उन्हीं की मूर्तियाँ प्रतिष्ठित की तथा मुमुक्षु को बाद में संत से सबको श्रीहरि के प्रति सर्वोपरि स्वरूप की उपासना दृढ़ हुई । इस प्रकार मुमुक्षुओं में सर्वोपरि उपासना क्रमशः सुदृढ़ हुई।

संप्रदाय के बड़े-बड़े सद्‌गुरु एक स्थूल दृष्टांत देकर **स्थूलारून्धती न्याय** समझाते हैं। जब छोटे बच्चे को चन्द्रमा दिखाया जाता है, तो छत के ऊपर संकेत किया जाता है। इसका अर्थ यह नहीं है कि वास्तव में चन्द्रमा छत के ऊपर है। वास्तव में तो चंद्रमा बहुत दूर है। इसी प्रकार भगवान पुरुषोत्तम की महिमा समझाने के लिए उन्हें पहले सत्पुरुष के समान, तत्पश्त् अवतारों के समान और अंत में अवतारी प्रतिपादित किया गया।

कुछ वचनामृतों में श्रीहरि ने स्वयं को श्रीकृष्ण के समान कहा, तो कहीं-कहीं वे स्वयं को उपदेष्टा, गुरु, आचार्य, साधु अथवा साधक के समान कहते हैं, किन्तु उत्तम मुमुक्षु तो अपने इष्टदेव को सभी से परें समझता है तथा मानता है, और अपने इष्टदेव जब स्वयं की पहचान गुरु, आचार्य आदि शब्दों से देंगे, तो वह समझेगा कि ऐसे शब्द तो उन्होंने अन्य लोगों के लिए कहे होंगे। श्रीहरि ने शिक्षापत्री में भी कहा है कि:

एतेषु यानि वाक्यानि श्रीकृष्णस्य वृषस्य च ।
अत्युत्कर्षपराणि स्युस्तथा भक्तिविरागयोः ॥
मन्तव्यानि प्रधानानि तान्येवेतरवाक्यतः ।
धर्मेण सहिता कृष्णभक्तिः कार्येति तद्रहः ॥

(शिक्षापत्री : 101-102)

अर्थात् सत्शास्त्रों में श्रीकृष्ण भगवान के स्वरूप के विषय में तथा धर्म, भक्ति एवं वैराग्य के विषय में उत्कृष्टभाव के जो शब्द लिखे गए हों उन्हीं को हमें मुख्य रूप से मानना चाहिए, तथा श्रीकृष्ण भगवान की भक्ति भी धर्म सहित करनी चाहिए। यही सभी सत्शास्त्रों का रहस्य है।

जहाँ भगवान के स्वरूप की महिमा अस्पष्ट हो अथवा यथार्थ न हो तो ऐसे शास्त्रों के शब्द भी हमें सर्वोपरी उपासना समझने के लिए ग्रहण नहीं करने चाहिए। परंतु उत्कृष्टभाव के शब्दों का ही ग्रहण करना चाहिए एवं उन शब्दों के द्वारा ही श्रीहरि के स्वरूप की प्रतीति दृढ़ करनी चाहिए।

❀

प्रश्न : शास्त्रों में कई संतों एवं अवतारों अपने विषय में परभाव के शब्द लिखे हैं। जैसे कि सांख्य मत के प्रणेता भगवान कपिलजी ने कहा था कि सारे जगत को सुख देनेवाली मेरे भय के कारण चलता है, सूर्य मेरे भय के कारण प्रदीप्त होता है, इन्द्र मेरे भय के कारण बरसता है, कभी मेरे भय से जलता है और मृत्यु मेरे भय से प्राणियों के बीच विचरता है।[30]

तथा भगवान श्रीकृष्ण ने गीता में कहा है कि मैं क्षर से परे और अक्षर से भी उत्तम हूँ अतः इस लोक में तथा वेदों में मैं पुरुषोत्तम नाम से प्रसिद्ध हूँ।[31]

तथा 'जो मेरी शरण में आता है, वही माया को लाँघकर परम को पाता है।'[32]

---

30. *मद्भयाद्वाति वातोऽयं सूर्यस्तपति मद्भयात् ।*
वर्षतीन्द्रो दहत्यग्नि मृत्युश्चरति मद्भयात् ॥
31. *यस्मात् क्षरमतीतोऽहमक्षरादपि चोत्तमः ।*
अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः ॥
32. मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते । (गीताः 7/14)

तथा 'मैं ही अग्निरूप होकर चारों प्रकार के अन्न को पचाता हूँ।[33]

तथा 'हे अर्जुन, मुझसे परे कोई नहीं है।'[34]

उपरोक्त शब्दों को देखकर वे सभी को भी पुरुषोत्तम कहे जा सकते हैं।

उत्तर : पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान स्वामिनारायण ने अनुप्रवेश करके ऐसे भक्तों अथवा अवतारों के द्वारा उपरोक्त शब्दों का उद्घोष करवाया परंतु कल्याण तो केवल श्रीहरि पुरुषोत्तम के द्वारा ही होता हैं। क्योंकि जब उक्त विभूतियों के हृदय से पुरुषोत्तम का प्रवेश निकल जाता है, तब विराट पुरुष भी अपनी प्रवृत्ति नहीं कर पाता, तो दूसरों की शक्ति का तो कहना ही क्या? अतः ऐसे शब्दों को सुनकर हमें समझना चाहिए कि उपरोक्त शब्द श्रीहरि के हैं, और वे जिन के हृदय में प्रवेश करते हैं। उनके सामर्थ्य को दबाकर वे अपना सामर्थ्य प्रकट करते है। परंतु इतने से उद्घोष से वे अवातर अथवा भक्त 'पुरुषोत्तम' नहीं हो सकते। वे प्रवेश निकलते ही अपने मूल स्थित में आ जाते हैं।

वही पुरुषोत्तमनारायण जब किसी कार्य के लिए पुरुषरूप धारण करते हैं, तब वह पुरुष पुरुषोत्तम के प्रकाश में लीन हो जाता है, और केवल पुरुषोत्तम ही रहते हैं। वैसे ही, जब वे मायारूप होते हैं, तब माया भी पुरुषोत्तम के तेज में विलीन हो जाती है। तब भगवान ही उसी रूप में रहते हैं। इसके पश्चात् भगवान महत्तत्त्वरूप में होते हैं, तथा महत्तत्त्व से प्रकट हुए अन्य तत्त्वरूप होते हैं।... इस प्रकार अनेक कार्यों के लिए जिस-जिस में उन पुरुषोत्तम भगवान का प्रवेश होता है, उन सभी को वे अपने प्रकाश द्वारा लीन उस रूप से स्वयमेव सर्वोत्कर्ष भाव के साथ विराजमान होकर रहते हैं।... जिस कार्य के लिए जिसमें उन्होंने स्वयं प्रवेश किया था, उस कार्य को सम्पन्न करने के बाद वे उसमें से स्वतः निकलकर अलग हो जाते हैं। इसके बाद वे जैसे पूर्व में थे, पुनः उसी स्थिति में हो जाते हैं। जो तीव्र प्रकाश एवं सामर्थ्य पहले दिखाई पड़ता था, वह पुरुषोत्तम नारायण का तेज था, ऐसा समझना चाहिए। (वच. पं. 7)

सत्संग में अवलबाई का दृष्टांत प्रसिद्ध है। उनके शरीर में श्रीहरि-

33. अहं वैश्वानरो भूत्वा... (गीता. 15/14)

34. मत्तः परतरं नान्यत्किंचिदस्ति धनंजय । (गीता : 7/7)

भगवान स्वामिनारायण का प्रवेश हुआ, तब वह उसी प्रकार कहती थी कि मैं स्वयं सहजानंद स्वामी हूँ किन्तु जब श्रीहरि का प्रवेश निकल गया, तो पूछने लगीं कि आप सब मेरे आसपास क्यों बैठे हैं ?

भगवान श्रीकृष्ण के साथ अत्यंत स्नेहभाव जूड़ी हुईं गोपियाँ कहती थीं कि गोवर्धन पर्वत मैंने उठाया था, तथा अघासुर मैंने मारा था। परंतु उनके कथन मात्र से वे स्वयं श्रीकृष्ण नहीं बन गई। उसी प्रकार वामदेवजी तथा प्रह्लादजी के दृष्टांत भी शास्त्रों में सुप्रसिद्ध हैं।

इस बात को स्थूल रूप से समझाते हुए गुणातीतानंद स्वामी ने कहा था कि 'मद्भयाद्वाति...' आदि श्लोक बोलकर उन्होंने कहा कि इन वचनों से (कपिलजी ने) अपना ऐश्वर्य तो बहुत ही दिखाया, किन्तु कल्याण तो उन्होंने केवल अपनी माता का ही किया। उनको देखते हुए मालूम हो जाता है कि उपरोक्त श्लोक अपने ऐश्वर्य को उद्घाटित नही करता, परंतु किसी और के ऐश्वर्य को प्रकाशित करता है। (स्वा. वा. 3/72)

❀

प्रश्न : अवतार कितने हुए हैं ? वे सब समान हैं ? या उनमें कोई भेद है ?

उत्तर : शास्त्रों ने चौबीस अवतारों का विवरण दिखा गया है। कहीं-कहीं दस अवतार (दशावतार) का भी संदर्भ मिलता है। किन्तु श्रीमद्भागवत में कहा है, 'जैसे अपार जलराशि वाले सरोवर से हज़ारों झरने फूटते हैं, उसी प्रकार सत्त्वगुण के निधि श्रीहरि से अनन्त अवतार प्रकट होते हैं।'[35]

गीता में कहा है : '**बहूनि मे व्यतीतानि जन्मानि तव चार्जुन !** हे अर्जुन ! मेरे और तेरे अनेक जन्म हो चुके हैं। उन सबको मैं तो जानता हूँ, परंतु हे परंतप ! तू नहीं जानता।' (गीता : 4/5)

निष्कुलानंद स्वामी कहते हैं कि सब अवतारों के कारण सहजानंद स्वामी जीवों पर दया करके उनका आत्यंतिक कल्याण करने के लिए वेदों की स्तुति सुनकर पधारे हैं। श्रीहरि ने स्वयं लिखा है, 'ज्यों वेदो का वचन ज्यों अविद्या कुं नाश करो ऐसी जो मेरी स्तुति किया है सो वचन आज मैं

---

35. *अवतारा ह्यसंख्येयाः हरेः सत्त्वनिधेर्द्विजाः ।*
यथाविदासिनः कुल्याः सरसः स्युः सहस्रशः ॥ (भाग. 1-3-26)

सत्य करता हूँ।' सत्संग में यह बात विख्यात है कि वैराटनारायण ने अपने पचास वर्ष एवं डेढ़ पहर दिन चढ़ने तक पुरुषोत्तम नारायण की स्तुति की, तब श्रीजीमहाराज इस ब्रह्माण्ड में प्रथम बार पधारे थे।

'एवो कर्यो मोटो उपकार, जेमां अनेक जननो उद्धार' (भ. चिं. प्र. 83/45)

पूर्व-अवतारों ने जीव के मूल अज्ञान का नाश नहीं किया, उस मूल अज्ञान का नाश करने के लिए पुरुषोत्तम नारायण आज स्वयं पधारे हैं।

शास्त्रों में कहा है कि 'तत्सृष्ट्वा तदनुप्राविशत्' अर्थात् वासुदेव नारायण ने पुरुष रूप से विराट पुरुष में प्रवेश किया, तब उसे अवतार कहा गया अर्थात् पुरुष से लेकर ब्रह्मादिक तक स्तम्ब पर्यन्त जब भी, जहाँ भी वासुदेव का अनुप्रवेश होता है, तब उस स्वरूप को अवतार कहा जाता है। अचार्य भगवद्प्रसादजी महाराज श्रीमद्भागवत की टीका 'भक्तमनोरंजनी' में कहते हैं कि 'अवतारान् क्रमिष्यन् प्रथमं पुरुषावतारमाह।' (भाग. 3/3/1) अवतारों का समझाते हुए प्रथम पुरुषावतार कहा जाता है। वही विभिन्न अवतारों का उद्भव स्थान तथा लय स्थान है, एवं उनका मूल कारण भी वही है। इस प्रकार चौबीस अवतार प्रसिद्ध हुए, परंतु श्रीहरि के तो असंख्य अवतार हुए थे। हालाँकि उन्हें परमेश्वर के अंश अथवा कलाअवतार कहे जाते हैं। उन सभी अवतारों में पुरुषोत्तम नारायण का ऐश्वर्य उनकी सर्वज्ञता आदि गुणों के कारण भले ही कोई सभी अवतारों को समान कहे किन्तु उन अवतारों में पुरुषोत्तम नारायण के स्वरूप का अनुप्रवेश एक समान नहीं है अतः अवतारों में अंतर अवश्य कहा जाएगा। इसके उपरांत अवतारों के धाम में भी भेद हैं। श्रीहरि ने अवतारों के भेद को समझाते हुए कहा है कि 'वे सब नारायण के ही अवतार हैं, फिर भी इन अवतारों में हमें ऋषभदेवजी में अत्यधिक रुचि रहती हैं। उनसे कुछ न्यूनरूप से कपिलजी और दत्तात्रेय एकसमान मालूम होते हैं।...भगवान के मत्स्य-कच्छपादि अन्य अवतार भी हैं, परन्तु उनमें हमारी अधिक रुचि नहीं है।' (वच. लो. 14)

इस प्रकार श्रीहरि सर्वोपरि, सर्व अवतारों के अवतारी, सर्व कारणों के कारण, सर्व देवों, ईश्वरों, अवतारों, अक्षरमुक्तों और अक्षरब्रह्म से परे हैं। वे ही

सबके उपास्य और सर्वकर्ता हैं। सदा साकार हैं। वे सबके नियंता हैं। उनसे परे कोई नहीं है। उनकी ब्रह्मरूप से भक्ति करनी चाहिए, यही उनका आदेश है।

अनन्य निष्ठा सहित सभी अवतारों का आदर

भगवान स्वामिनारायण ने सभी देवों, आचार्यों, अवतारों के प्रति अत्यंत आदरभाव रखा था। सभी अवतार उन अवतारों के कार्य तथा उनके भक्त सर्वोपरि भगवान स्वामिनारायण के कार्यों से तथा उनके भक्तों से अधिक नहीं है। इस सिद्धांत को समझने के लिए अवतारों के साथ श्रीहरि की तुलना की गई है। श्रीहरि ने स्वनिर्मित मंदिरों में विभिन्न देवों के स्वरूप प्रतिष्ठित करके उनका भी आदर किया था। किन्तु उपासक का लक्षण यहीं है कि उसे अपने इष्टदेव के प्रति प्रतिव्रता स्त्री के समान अनन्य निष्ठा रखनी चाहिए। इसी सिद्धांत पर उन्होंने अधिक प्राधान्य दिया है।

श्रीहरि ने वचनामृत ग. अं. 16 में पतिव्रता स्त्री के समान निश्चय रखने के लिए आदेश दिया है। उसका सारांश यह है कि 'यदि कोई पतिव्रता स्त्री हो... उसे अपने पति के साथ जैसी प्रीति होती है वैसी किसी अन्य पुरुष से कभी नहीं होती। तथा अपने पति का जैसा गुण ग्रहण करती है वैसा अन्य किसी का ग्रहण नहीं करती। वह तो अपने पति की मर्ज़ी के अनुसार ही आचरण करती है। इस प्रकार पतिव्रता स्त्री को अपने पति के प्रति ही दृढ़ निष्ठा बनी रहती है। वैसे ही भगवद्भक्त को भी भगवान में दृढ़ निष्ठा रखनी चाहिए। ...उसे तो अन्य अवतारों के प्रति भी अनन्य प्रीति नहीं रहती।' (वच. अं. 16)

श्रीहरि 'सर्वजीवहितावह' थे। शिक्षापत्री में उन्होंने कहा है '**तस्यैव सर्वथा भक्तिः कर्तव्या मनुजैर्भुवि।**' इस पृथ्वी पर सभी मनुष्यों को भगवान की भक्ति करनी चाहिए। (शिक्षापत्री : 113)

सच्चे मुमुक्षु को सर्वोपरि प्राप्ति का बल अवश्य रखना चाहिए। किन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि अन्य देवी-देवताओं की निन्दा करें। श्रीहरि ने देव-निन्दा का स्पष्ट निषेध किया है। देवी-देवताओं का निरादर करनेवाले व्यक्तियों पर महाराज कदापि प्रसन्न नहीं होते थे। ऐसी तुच्छ अहंवृत्ति को उन्होंने संप्रदाय में स्वीकृति नहीं दी है।

ब्रह्मस्वरूप शास्त्रीजी महाराज ने इस परम्परा का पालन किया है।

अक्षरपुरुषोत्तम मंदिर में उन्होंने अवतारों की मूर्तियाँ स्थापित की हैं। शुक, सनकादिक, नारद, ध्रुव, प्रह्लाद, गोपियाँ जैसे भक्तों से जीवन में प्रेरणा मिले और भक्ति दृढ़ होती रहे, इसलिए सभा में श्रीमद्भागवत की कथा भी करते और करवाते थे। संप्रदाय में सबकी विशाल दृष्टि हो, संकुचित न हो, यही उनका आग्रह था।

श्रीहरि के साधु और परमहंस, अक्षरब्रह्म गुणातीतानंद स्वामी, ब्रह्मस्वरूप प्रागजी भक्त, ब्रह्मस्वरूप शास्त्रीजी महाराज और ब्रह्मस्वरूप श्री अक्षरपुरुषोत्तम उपासना ने अविरत प्रयत्न किया है कि जीवमात्र श्रीहरि के सच्चे स्वरूप को जाने और उनकी उपासना करे। वर्तमानकाल में प्रकट ब्रह्मस्वरूप प्रमुखस्वामी महाराज निरंतर विचरण करते हुए देश-विदेशों में स्वामिनारायण भगवान की विजय पताका लहरा रहे हैं। स्वामीश्री सबको ऐसी ही ज्ञानदृष्टि देते रहे हैं कि ऐसी कोई अहंवृत्ति रखनी नहीं चाहिए कि 'जो मेरा है वही श्रेष्ठ है।' किन्तु 'जो अच्छा है वह मेरा है' ऐसा समझकर गुणग्राहक दृष्टि रखकर कार्य करते रहना चाहिए।

आज अधर्म, नास्तिकवाद और भोगवाद का जोर बढ़ गया है। ऐसे संकट के समय में, यह स्वामिनारायण संप्रदाय की निष्ठा जिसका उल्लेख ऊपर किया गया है, आसुरी तत्त्वों को परास्त करने पर अधिक बल देती है, यह निःशंक है। इस कारण स्वामिनारायण अर्थात् अक्षरपुरुषोत्तम संप्रदाय संसार में एक जीवंत संप्रदाय के रूप में प्रसिद्धि पा रहा है। विशेषकर बुद्धिजीवी युवावर्ग इस संप्रदाय में विशाल संख्या में शामिल हो रहा हैं। यहाँ उन्हें अपनी समस्याओं का समाधान मिलता है।

प्रत्येक मुमुक्षु की ब्रह्मरूप होने की इच्छा रहा करती है। किन्तु ब्रह्मरूप होने के लिए अक्षरब्रह्म की आवश्यकता अनिवार्य है। ब्रह्मरूप होने का श्रेष्ठ साधन तो भगवान स्वामिनारायण ने अपने साथ अनादि ब्रह्म को लाकर बताया था। इस प्रकार भगवान स्वामिनारायण ने सच्ची और सर्वोपरि उपासना का प्रवर्तन किया है। भगवान स्वामिनारायण इस पृथ्वी पर संत द्वारा सदा प्रकट हैं। आज प्रमुखस्वामी महाराज के रूप में हमें ब्रह्मरूप संत मिले हैं।

❖ ❖ ❖

5 प्रकट

प्रकट का अर्थ क्या है ? किस रीति से प्रकट हैं ?

परब्रह्म पुरुषोत्तम नारायण इस पृथ्वी पर अमित करुणा करके प्रकट हुए। उन्होंने अनंत जीवों का आत्यंतिक कल्याण-मार्ग खोल दिया है। हमें अनेक कष्ट साध्य साधनों के पुण्य प्रताप से ऐसा सत्संग मिला है। अब कठिनतम साधनों से हमें छुट्टी मिल गई है। भगवान ने निम्न कोटियों की प्राप्ति के द्वार बंद कर दिए हैं तथा प्रकट उपासना का सरल मार्ग बताकर, अक्षरधाम का द्वारा खोल दिया है। अत: निष्कुलानंद स्वामी ने लिखा :

'बंध कीधां बीजां बारणां रे, वहेती कीधी अक्षरवाट पुरुषोत्तम प्रगटी रे।'

अर्थात् पुरुषोत्तम ने प्रकट होकर अन्य सभी द्वार बंद कर दिए हैं, और अक्षरधाम का द्वार खोल दिया है।

श्रीहरि ने अक्षरधाम की प्राप्ति के लिए प्रकट उपासना के अलौकिक सिद्धांत को समझाया है। किन्तु पुरुषोत्तम का प्रकट स्वरूप क्या है ? और वे किस रीति से सदा प्रकट रहते हैं ? इस विषय पर यहाँ विचार प्रस्तुत हैं।

भगवान अपने धाम में विराजित हों, तो पृथ्वीवासियों के लिए अप्रकट-परोक्ष हैं, यदि इस पृथ्वी पर स्वयं विचरण करते हों, तो वे प्रकट-प्रत्यक्ष है। अर्थात् श्रीहरि का जो स्वरूप इस पृथ्वी पर भक्तों को अपनी दृष्टि से दिखाई देता हो, वह स्वरूप 'प्रकट' कहलाता है। श्रीहरि मात्र अपने जीवनकाल में रहनेवाले जीवों के कल्याण के लिए ही प्रकट होते, तो जीवमात्र के कल्याण की व्यवस्था अपूर्ण रह जाती और भविष्य में आनेवाले मुमुक्षु जीवों के लिए मुक्ति का मार्ग बंद हो जाता। परिणामस्वरूप संप्रदाय भी नष्ट हो जाता!

किन्तु श्रीहरि ने शास्त्रों का यह सिद्धांत समझाया है कि भगवान

पृथ्वी पर सदा प्रकट ही रहते हैं। अनंतकाल तक जो जीव इस प्रकट स्वरूप का आश्रय लेगा उसका हमेशा कल्याण होगा। रघुवीरजी महाराज ने शिक्षापत्री के भाष्य में संप्रदाय शब्द की व्याख्या इस प्रकार की है, '**गुरुपरंपराप्राप्तः सदुपदेशः सम्प्रदायः।**' अर्थात् गुरुपरंपरा के सदुपदेश (ब्रह्म-परब्रह्म के सिद्धांत का) जहाँ मिले वही सच्चा संप्रदाय है।

अमरकोश में कहा गया है, '**संप्रदायो गुरुक्रमः।**' अर्थात् संप्रदाय गुरुओं की आध्यात्मिक परंपरा को कहते हैं।

मोक्ष का पथ सदा सर्वदा खुला रहे, इसलिए भगवान कभी परोक्ष होते ही नहीं। वे तो एक या दूसरे स्वरूप में प्रकट रहते ही हैं। भगवान ने तो अपने श्रीमुख से ऐसा कहा है कि मैं अपनी आठ प्रकार की प्रतिमा तथा सन्त में निरन्तर प्रवेश करके रहता हूँ।' (वच. ग. प्र. 68)

इस सिद्धांत के अनुसार, श्रीहरि इस संप्रदाय में अपनी मूर्ति के द्वारा तथा ब्रह्मस्वरूप सत्पुरुष द्वारा सदा काल प्रकट रहते हैं। सत्संग के चारों अंग मूर्ति, संत, शास्त्र और आचार्य कल्याणकारी हैं। परंतु चारों में सबसे श्रेष्ठ संत हैं और उनकी श्रेष्ठता श्रीहरि के वचनों से अधिक पुष्ट होती है।

श्रीमद्भागवत में भी संत की महिमा मूर्तियों एवं तीर्थों से अधिक बताई गई है :

'न ह्यम्मयानि तीर्थानि न देवा मृच्छिलामयाः ।
ते पुनन्त्युरुकालेन दर्शनादेव साधवः ॥'

(श्रीमद्भागवत : 10-84-11)

'तीर्थ स्थान केवल जलाशय ही नहीं हैं, न ही मूर्तियाँ केवल मिट्टी और पत्थर हैं। (यानि उनमें दिव्यता है) किन्तु वे देर से मुमुक्षु को पवित्र करते हैं। जबकि संत के दर्शनमात्र से ही जीव पवित्र हो जाता है।'

अक्षरब्रह्म गुणातीतानंद स्वामी से पूछा गया कि जब भगवान परोक्ष होंगे तब उनका संबंध मुमुक्षु को कैसे रहेगा?' फिर उन्होंने उत्तर दिया कि, 'कथा, कीर्तन, वार्ता, भजन और ध्यान द्वारा परोक्षरूप भगवान का संबंध तो कहलाएगा। परंतु इसके उपरांत बड़े साधु का संग तो साक्षात् भगवान का संबंध ही कहलाएगा तथा उनके द्वारा भगवान का ही आनंद मिलेगा। क्योंकि संत में भगवान हर प्रकार से निवास करते हैं। यदि प्रत्यक्ष हो फिर भी उनकी

यथार्थ पहचान नहीं की तो मानो कि भगवान के साथ हमारा कोई संबंध ही नहीं है। अत: उनकी यथार्थ पहचान के बिना यदि भगवान प्रत्यक्ष हों तो भी क्या, और न हो तो भी क्या? जिस संत में भगवान हर प्रकार से निवास करके रहे हैं, उनकी यथार्थ पहचान होंगी तो भगवान आज प्रत्यक्ष ही है तथा उनकी यथार्थ पहचान नहीं हुई तो साथ रहने पर भी वे परोक्ष ही हैं।' तब एक साधु ने पूछा कि, 'मूर्तियों में भगवान प्रत्यक्ष नहीं हैं ?' तब स्वामी ने कहा कि प्रत्यक्ष भगवान तथा सन्त के चरित्र में मनुष्यभाव आए तो अमावस्या के चन्द्र के समान घट जाता है और दिव्यभाव दिखाई दे तो दूज के चन्द्रमा के समान बढ़ता है। ये मूर्तियाँ कौन से चरित्र करती हैं कि उनका अवगुण आए और जीव की अवस्था निम्नकक्षा की हो? अत: बोलते-चलते जो भगवान है, वही प्रत्यक्ष कहलाते हैं। जो बड़े सन्त होते हैं, वे ही मूर्तियों में देवत्व की स्थापना करते हैं। परन्तु मूर्तियाँ, शास्त्र और तीर्थ ये तीनों मिलकर भी एक साधु का निर्माण नहीं कर सकते। किन्तु जो बड़े सन्त हैं, वे मूर्ति, शास्त्र और तीर्थ इन तीनों का निर्माण कर सकते हैं। इसलिए जिसमें भगवान सर्व प्रकार से निवास करते हों ऐसे जो सन्त हैं वे ही प्रत्यक्ष भगवान हैं।' (स्वा. वा. 5/395)

श्रीहरि ने कहा है, 'भगवान जब पृथ्वी पर प्रत्यक्ष रूप से प्रकट न हों, तब भगवान से मिले हुए (सम्बंधवाले) साधु का आश्रय ग्रहण करना चाहिए। उनसे भी जीव का कल्याण होता है।' (वच. वर. 10)

भगवान के इन शब्दों को निष्कुलानंद स्वामी ने अपने पद्य में इस प्रकार लिखा है :

'कह्युं बहु प्रकारे कल्याण रे, अति अगणित अप्रमाण रे ।
पण सहुथी सरस संतमां रे, राख्युं वालमे एनी वातमां रे ॥'

(नि. का. पुरुषोत्तमप्रकाश - 42)

अर्थात् कल्याण के अनंत, अनगिनत प्रकार हैं, किन्तु सबसे अधिक कल्याण संत के द्वारा होता है। स्वयं भगवान ने भी अपनी बातों में इसी बात का प्रवर्तन किया है।

अत: श्रीहरि सम्यक् रूप से अर्थात् सर्वांश सम्पूर्ण रीति से संत में निरंतर प्रकट रहते हैं। इसका कारण यह है कि वे छ: हेतु लेकर पृथ्वी पर पधारे थे। उनमें से प्रमुख हेतु है उनका इस पृथ्वी पर अपने परम एकांतिक

संत द्वारा[36] निरंतर प्रकट रहना और अनंत जीवों का कल्याण करना।

इस प्रकार जब भगवान स्वयं इस पृथ्वी पर विराजमान हों, तब भगवान प्रकट कहलाते हैं। जब वे भौतिक शरीर से अंतर्धान हो जाते हैं किन्तु इस पृथ्वी पर संत द्वारा विचरण करते हैं, तब संत को भगवान का प्रकट स्वरूप कहा जाता है।

सद्‌गुरु निष्कुलानंद स्वामी ने पुरुषोत्तमप्रकाश-41 में कहा है :

'संत हुं ने हुं ते वळी संत रे, एम श्रीमुखे कहे भगवंत रे ।
संत मानजो मारी मूरति रे, एमां फेर नथी एक रती रे ॥'

अर्थात् 'मैं संत में हूँ और संत मुझमें है। ऐसा भगवान ने अपने मुख से कहा है कि संत को मेरी ही मूर्ति समझो इसमें तनिक भेद नहीं है।'

प्रकट की पहचान ही ज्ञान

श्रुति में कहा है, '**ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः ।**'

अर्थात् ज्ञान के बिना मुक्ति नहीं होती ।

और, '**तमेव विदित्वातिऽमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय ॥**'

अर्थः 'भगवान के स्वरूप का साक्षात् ज्ञान होने पर ही जीव का कल्याण होता है। परमात्मा को जानने के पश्चात् ही संसार-चक्र से मुक्ति मिलती है, मुक्ति के लिए ज्ञान के अतिरिक्त दूसरा मार्ग नहीं है।'

तत्काल मुक्ति देनेवाले ज्ञान की परिभाषा क्या है? ज्ञानी किसे कहते हैं ? यह ज्ञान शास्त्र का वाच्यार्थ ज्ञान नहीं है, लेकिन लक्ष्यार्थ ज्ञान है। श्रीहरि कारण बताते हुए कहते हैं, 'जिन भक्तों ने शास्त्रों द्वारा भगवान को जान लिया है, उनका भी तो जन्मान्तर के बाद कल्याण हो सकता है!' (वच. लो. 7)

ज्ञान की व्याख्या करते हुए श्रीहरि कहते हैं, 'इन सभी में भगवान अन्तर्यामीरूप तथा कारणरूप होकर रहे हैं। **वे ही भगवान यह प्रत्यक्ष**

---

36. *स्वयंपूर्व जीवान्मुमुक्षून्निजोपासनाज्ञानमाबोध्य नेतुं स्वधाम ।*
तथा स्वस्वभक्ताश्रयेणापि कर्तुं मुमुक्षून्नवानागतः षष्ठहेतुः ॥
'पूर्व के मुमुक्षु जीवों को अपनी उपासना तथा ज्ञान का बोध करवाके अपने अक्षरधाम में ले जाने एवं अपने एकांतिक भक्त के संबंध से नए मुमुक्षु बनाने आया हूँ - यह छठा हेतु है।'

प्रमाण हैं। जो पुरुष इस रीति से महिमा सहित भगवान को जानता और देखता है, उसे ही **परिपूर्ण ज्ञान** कहते हैं।' (वच. लो. 7)

क्योंकि वह ज्ञान मुक्ति का कारण है। अन्य साधन तो ज्ञान के अंग हैं। उन साधनों का मुक्ति के प्रति स्वतंत्र रूप से कारणभाव नहीं है।

'जो पुरुष इन्द्रियों, अन्त:करण तथा अनुभव तीनों द्वारा **प्रत्यक्ष भगवान को यथार्थ रूप से जान लेता है,** वही पूर्ण ज्ञानी कहलाता है। यदि इन तीन प्रकारों में से एक भी प्रकार कम हो, तो वह आत्यन्तिक ज्ञान नहीं कहलाता है और वह जन्म-मृत्यु को भी पार नहीं कर सकता। यदि वह किसी साधन द्वारा ब्रह्मभाव को प्राप्त करय ले, किन्तु **प्रत्यक्ष भगवान को इस प्रकार न जानता हो, तो भी पूरा ज्ञानी नहीं कहा जा सकता।'** (वच. लो. 7)

'अक्षरधाम में भगवान का जैसा स्वरूप रहता है, वैसा ही पृथ्वी पर भी भगवान का मनुष्यस्वरूप रहता है। वे उस स्वरूप तथा इस स्वरूप में लेशमात्र भी अन्तर नहीं समझते। जिन्होंने इस प्रकार भगवान को जान लिया है, उन्हें ही भगवान के तत्त्वत: ज्ञाता कहा जाता है तथा उनके सम्बंध में यह भी कहा जाता है कि उनकी माया की निवृत्ति हो चुकी है। जिन्हें इस प्रकार का ज्ञान हो जाता है, उन्हें ही ज्ञानी एवं एकान्तिक भक्त भी कहते हैं।' (वच. पं. 7)

'ऐसा ज्ञानी पुरुष **सदैव साकारमूर्ति प्रत्यक्ष भगवान को प्रकृति**, पुरुष एवं अक्षर से परे मानते हुए, सर्व के कारण तथा सर्व के आधार जानकर अनन्यभाव से उनकी सेवा करता रहता है। इस प्रकार की समझ को कहते हैं। उसे 'ज्ञान' कहते हैं। वैसे ज्ञान द्वारा आत्यन्तिक मोक्ष होता है।' (वच. लो. 7)

गुणातीतानंद स्वामी समझाते हैं, 'वह आत्यंतिक ज्ञान तो इस साधु की महिमापूर्ण पहचान हुई वही है।' (स्वा.वा. 5/7)

निष्कुलानंद स्वामी का कथन है:-

'ए ज ज्ञानी ए ज तत्त्ववेत्ता, जेणे प्रगट प्रभु ने पेखिया ।
ए विना रखे ज्ञानी गणो, जेणे हरि नयणे नथी देखिया ॥'

(नि. का. सारसिद्धि - 30)

अर्थात् 'जिसने अच्छी प्रकार से निकट से प्रकट भगवान को अपने नेत्रों से पहचान लिया है-जान लिया है, वही ज्ञानी और तत्त्ववेत्ता है। जिसने

उन्हें, अपने नेत्रों से अच्छी तरह नहीं देखा है, उसे ज्ञानी नहीं कह सकते।'

प्रकट भक्ति की महिमा

भगवान इस पृथ्वी पर स्वयं या संत के स्वरूप में हमेशा रहते हैं । जो प्रकट भगवान को जान जाता है, वही भक्त है। जानने के पश्चात् उनकी शरण ग्रहण करना ही भक्ति है। श्रीहरि ने इन शब्दों में इस कथन का समर्थन करते हुए कहा है, 'इस जीव को जब भरतखंड में मनुष्यदेह मिलती है तब भगवान के अवतार या भगवान के साधु निश्चित रूप से पृथ्वी पर विचरण करते रहते हैं। यदि जीव को उनकी पहचान हो जाए, तो वह जीव भगवान का भक्त हो जाता है।' (वच. वर. 19)

'इस प्रकार **प्रत्यक्ष भगवान** के कल्याणकारी गुणों को जानना और परमेश्वर का दृढ़ आश्रय ग्रहण करना, उसीका नाम भक्ति हैं।'

(वच. ग. म. 10)

प्रकट भक्ति की प्रशंसा करते हुए मुक्तानंद स्वामी कहते हैं :

'कल्पतरु सर्वना संकल्प सत्य करे,
पासे जई प्रीतशुं सेवे ज्यारे;
तेम जे प्रकट पुरुषोत्तम प्रीछशे,
थाशे हरिजन तत्काळ त्यारे...
प्रकट ने भजी भजी पार पाम्यां घणां,
गीध गणिका कपिवृंद कोटि;
व्रजतणी नार व्यभिचार भावे तरी,
प्रकट उपासना सौथी मोटी,'
'प्रकटना भजनथी परम सुख पामीए,
उर थकी नाश पामे अंधारुं।'

'कल्पतरु की निष्ठापूर्वक सेवा करने से वह हमारे सारे संकल्पों को पूर्ण कर देता है। उसी प्रकार जो प्रकट पुरुषोत्तम को पहचान लेता है वह तुरंत भक्त बन जाता है। प्रकट (सगुण-साकार) भगवान को भजते हुए अनेक जीवों का परम कल्याण हुआ है। गीध (जटायु-संपाति), गणिका और बंदर भी भवसागर तैर गए। व्रज की नारियाँ प्रकट भगवान की

उपासना, जो सबसे उत्तम हैं, करके विकारों से मुक्त हो गईं। केवल प्रकट भगवान की उपासना करने से परम सुख की प्राप्ति होती है और अंतर का अंधकार मिट जाता है।' निष्कुलानंद स्वामी कहते हैं :

'मोटे भाग्ये भेटे भगति, प्रगट प्रभु परमाणनी ।
तेह विनानी जे भगति, ते तो मत ममतना ताणनी ॥'

अर्थात् 'केवल बड़े भाग्य से ही कोई प्रकट भगवान की उपासना कर सकता है। प्रकट भगवान के बिना जो भक्ति की जाती है उसमें अहंता-ममता होती है।' (नि. का. सारसिद्धि - 22)

निष्कुलानंद स्वामी ने अपनी पुस्तक 'भक्तिनिधि' में प्रकट की भक्ति को सार का सार कहा है अर्थात् सर्वोत्तम बताया है । जब शिवजी ने सुना कि व्रजवासियों को भगवान के दर्शन-स्पर्श का सुख मिला तो उन्हें दुःख हुआ, और विचार आया यदि मैंने भी ग्वाल के रूप में जन्म लिया होता तो मैं भी यही आनंद प्राप्त करता । ब्रह्माजी भी प्रकट ब्रह्म का सुख लेने के लिए मछली बने। निष्कुलानंद स्वामी लिखते हैं :

'एम प्रगट भक्ति सहु ऊपरे, एथी उपरांत नथी कांई ।
निष्कुलानंद निश्चे वारता, सौने समजवी मनमांई ॥'

(नि. का. भक्तिनिधि-15)

प्रकट-साकार की उपासना सर्वोपरि है, इससे महान कोई नहीं है। निष्कुलानंद निश्चय पूर्वक कहते हैं कि सभी को यह बात अपने मन में भलीभाँति समझ लेनी चाहिए। सद्गुरु ब्रह्मानंद स्वामी ने भी लिखा है :

'प्रगट स्वरूप उपासी, धन्य सो प्रगट स्वरूप उपासी ।
जो प्रकट भगवान की उपासना करते हैं वे धन्य हैं ॥'

गुणातीतानंद स्वामी ने कहा है : 'कोटि कल्प तक भगवान को भजे बिना सुख नहीं मिलता और प्रकट भगवान है, प्रकट बातें हैं और अन्यत्र तो चित्रित किए हुए सूर्य हैं।' (स्वा. वा. 5/64)

श्रीहरि ने कहा, 'जो भक्त प्रत्यक्ष भगवान के प्रति दृढ़ निष्ठा रखता हो तथा उनके दर्शन से ही स्वयं को परिपूर्ण मानता हो तथा अन्य किसी वस्तु की इच्छा न रखता हो, उसे तो भगवान स्वयमेव बलपूर्वक अपने धाम में अपना ऐश्वर्य और अपनी मूर्तियाँ दिखाते हैं।' (वच. ग. प्र. 9)

भक्त, 'भगवान श्रीकृष्ण की प्रत्यक्ष मूर्ति के सिवा किसी भी अन्य पदार्थों की इच्छाओं नहीं रखता, उसे भले ही न्यून आत्मनिष्ठा हो एवं कम वैराग्य हो, परंतु वह देह-त्याग करके भगवान के धाम में उत्कृष्ट सुख को प्राप्त करता है।' (वच. ग. अं. 5)

प्रकट भगवान के संबंध से दोष मिटते हैं। गुणातीतानंद स्वामी ने कहा, 'इन्द्र ने विश्वरूप ब्राह्मण की हत्या की थी, तो उसे चार ब्रह्महत्याओं का पाप लगा। ...तब इन्द्र को नारदजी से मुलाकात हुई। नारदजी ने कहा, 'आपके भाई वामनजी भगवान का अवतार है। अतः तुम उनका आश्रय लो। इन्द्र ने उसी आदेश के अनुसार वामनजी का निश्चय किया। उसी कारण ब्रह्महत्याओं का पाप मिट गया।' इस प्रकार प्रकट के आश्रय से काम हो जाता है।' (स्वा. वा. 1/293)

प्रकट भक्ति – शांति का पथ

प्रकट की भक्ति से आंतरिक आनंद एवं शांति की प्राप्ति होती है। सद्गुरु मुक्तानंद स्वामी ने एकबार श्रीहरि से शांति प्राप्त करने का उपाय पूछा। श्रीहरि ने जन्म से लेकर अपने जीवन की अनेक घटनाएँ सुनाईं। मुक्तानंद स्वामी ने सोचा कि महाराज ने मेरा प्रश्न समझा नहीं है। अतः दूसरे दिन उन्होंने वही प्रश्न पुनः पूछा। श्रीहरि ने वही जीवन-चरित्र की बातें दोहरा दीं। फिर भी मुक्तानंद स्वामी रहस्य समझ न सके। अंत में महाराज ने कहा, 'स्वामी! गाँवों में विचरण कर आओ, तुम्हें शांति मिल जाएगी।'

विचरण करने के लिए मुक्तानंद स्वामी गढ़डा से रवाना हुए। नित्यानंद स्वामी ने उनके पीछे जाकर उन्हें समझाया, 'श्रीहरि स्वयं प्रकट भगवान हैं, प्रकट के चरित्रों में ही शांति है, और कहीं नहीं है। महाराज आपको यही समझाना चाहते थे, अतः उन्होंने अपने चरित्र की बातें की थीं!' तब मुक्तानंद स्वामी ने अद्भुत रहस्य पा लिया और चरित्रों में मन लगा दिया।

व्यासजी ने भी अनेक ग्रंथों की रचना की, किन्तु उनके मन को शांति नहीं मिली। व्यासजी ने अपनी अशांति की बात नारदजी से कही। तब नारदजी ने उपाय बताते हुए कहा कि प्रकट श्रीकृष्ण भगवान के चरित्रों का गान करो। तब व्यासजी ने श्रीमद्भागवत पुराण की रचना की और उनके

अंतर की अशांति दूर हुई।

श्रीहरि ने इसी कारण मुक्तानंद स्वामी को आज्ञा की थी: 'आप भी स्व-सम्प्रदाय तथा अपने इष्टदेव सम्बंधी वाणी तथा शास्त्र की ही जीवन पर्यन्त रचना करते रहना। जब तक आपका शरीर बना रहे, तब तक आपके लिए यही आज्ञा है।' (वच. ग. म. 58)

मुक्तानंद स्वामी इस आज्ञा को शिरोधार्य कर जीवन की अंतिम साँस तक संप्रदाय के साहित्य की रचना करते रहे। उन्होंने स्पष्ट लिखा :

'प्रकटना भजनथी परम सुख पामिए,
उर थकी नाश पामे अंधारुं, भजन कर भावशुं।'

'केवल प्रकट भगवान की भक्ति से परम शांति मिलती है, और अंतर का अंधकार मिट जाता है। अत: हे जीव, भाव और प्रेमपूर्वक भगवान का भजन कर।'

स्वरूपानंद स्वामी को प्रकट महाराज की मूर्ति अंतर में दिखाई देती थी और उसी मूर्ति में उन्हें लगन लगी थी। किन्तु एक बार उनको महाराज की प्रेरणा से कुछ रोग हुआ। रोग-शय्या पर पड़े स्वरूपानंद स्वामी अपने अंतर में श्रीहरि की मूर्ति देखने में असफल रहे और बड़े दु:खी हुए । दीन होकर उन्होंने श्रीहरि के पास आकर उनकी स्तुति की। उन्होंने कहा, 'तुम पर्वतभाई के पास जाओ, शांति मिल जाएगी।' पर्वतभाई ने उनसे बातें करते हुए अचानक कहा, 'स्वामी, आप दादाखाचर के मकान के छत की खपरैलों का ध्यान करो शांति मिल जाएगी।' स्वरूपानंद स्वामी को तुरंत अपनी भूल का अनुभव हुआ। उन्होंने स्वीकार किया कि श्रीहरि के संबंध से दरबार भवन के छत की खपरैल ने भी निर्गुणभाव को प्राप्त कर लिया है और वे ध्यान लगाने के योग्य बन गई हैं! इसलिए मुझे श्रीहरि के प्रकट स्वरूप में अधिक लगन लगानी चाहिए। उन्होंने ऐसा ही किया, तो अंतर में अत्यंत शांति का अनुभव होने लगा।

प्रकट भगवान या भगवान के संत द्वारा मोक्ष

अनेक मुमुक्षु अपने मोक्ष के लिए भगवान के परोक्ष स्वरूप की उपासना करते हैं। किन्तु समस्त शास्त्रों का सार यही है कि प्रकट भगवान और उनके संत के बिना आत्यंतिक कल्याण संभव नहीं है। मोक्ष का मूल

आधार बताते हुए श्रीजीमहाराज कहते हैं :

'कल्याण के लिए तो भगवान को सबके कर्ताहर्ता समझना ही पर्याप्त है। जीव को जैसे परोक्ष रूप भगवान के रामकृष्णादिक अवतारों की महिमा जानता है, तथा परोक्षरूप नारद-सनकादि, शिवजी, जडभरत, हनुमान और उद्धव आदि साधुओं का माहात्म्य समझ में आता है, वैसा ही माहात्म्य यदि **प्रत्यक्ष भगवान और उन भगवान के भक्त साधु का जान लिया तो उसे कल्याण के मार्ग में कुछ भी समझना शेष नहीं रह जाता।** भले ही यह वार्ता एक बार कहने से समझें अथवा लाख बार कहने से समझें, आज समझें या एक लाख वर्षों के बाद समझें, परन्तु इस बात को समझने से ही छुटकारा होता है। ...जिसको इस सिद्धांत का निश्चय हो चुका तो उसे सभी रहस्य हस्तगत हो चुके हैं। कल्याण के मार्ग से उसका कभी भी पतन नहीं होता। ...अतः यह वार्ता **समस्त शास्त्रों की रहस्यद्योतक है।**' (वच. ग. म. 21)

❀

'इस जीव को भगवान के परोक्षस्वरूप के सम्बंध में जैसी प्रतीति होती है, **वैसी दृढ़ प्रतीति भगवान के प्रत्यक्षस्वरूप** में नहीं हुई है!' श्रुति में यही बात बताई गई है कि परोक्ष देवों में मुमुक्षु को जो प्रतीति होती है, वैसी प्रतीति यदि प्रत्यक्ष गुरुरूप हरि में हो जाए तो, जितने भी अर्थ प्राप्त हो सकते हैं, वे समस्त अर्थ उसको प्राप्त हो जाते हैं। जब ऐसा सन्त-समागम आपको प्राप्त हुआ है, तब यह समझना चाहिए कि देहत्याग के बाद हमें जो भगवान की प्राप्ति करनी है, वे भगवान आज प्रत्यक्ष प्राप्त हुए हैं। इसलिए, जिसको परमपद कहते हैं, मोक्ष कहते हैं, वह इसी जीवन में आज ही सदेह प्राप्त हो गया!' (वच. ग. अं. 2)

'जीव के कल्याण का कारण और जीव माया को पार करके ब्रह्मरूप हो जाता है, इसका कारण पुरुषोत्तम स्वरूप वासुदेव भगवान तथा उनके **प्रत्यक्ष स्वरूप का ज्ञान, ध्यान, कीर्तन तथा कथा आदि ही हैं।** इन उपायों के द्वारा ही जीव माया को पार करके अति महत्ता को प्राप्त कर लेता है तथा भगवान के अक्षरधाम को प्राप्त कर लेता है। ' (वच. ग. म. 32)

❀

'जिसको अपने कल्याण की इच्छा हो, उसको उन-उन लक्षणों द्वारा

भगवान को पहचान कर उन भगवान की शरण में जाना चाहिए तथा उनका दृढ़ विश्वास रखना चाहिए। उनकी आज्ञा में रहकर उनकी भक्ति करना, यही कल्याण का उपाय है। भगवान जब पृथ्वी पर प्रत्यक्ष रूप से प्रकट न हों, तब **भगवान से मिले हुए (सम्बंधवाले) साधु** का आश्रय ग्रहण करना चाहिए। उनसे भी जीव का कल्याण होता है।' (वच. वर. 10)

❀

'माया से मुक्त होने का उपाय तो यह है कि जब समस्त कर्मों को एवं माया को नाश करनेवाले, तथा माया से परे निवास करनेवाले **साक्षात् श्रीपुरुषोत्तम भगवान, अथवा उन भगवान से मिले हुए सन्त** की जीव को प्राप्ति होती है, तब उनके आश्रय से माया का उल्लंघन किया जा सकता है।' (वच. जेतलपुर 1)

इसके अतिरिक्त अनेक स्थानों पर वचनामृत में श्रीजीमहाराज ने प्रकट **भगवान और प्रकट संत को ही आत्यंतिक कल्याण के लिए साधन बताया है।** सब शास्त्रों का सार बताते हुए उन्होंने कहा है , 'यदि मुमुक्षु को भगवान तथा भगवान के सन्त की प्राप्ति हो जाए तो उसके लिए उससे बढ़कर दूसरा कोई कल्याण हो ही नहीं सकता। **यही परम कल्याण है।** (वच. ग. म. 59)

श्रीजीमहाराज के हृदयगत अभिप्राय को समझनेवाले एवं शास्त्रनिपुण गुणातीतानंद स्वामी ने अपनी बातों में कहा है कि 'मोक्ष के दाता, भगवान और साधु ये दो ही हैं।' (स्वा. वा. 1/20)

❀

'प्रकट भगवान के बिना करोड़ नियम पालने पर भी कल्याण नहीं होता और प्रकट भगवान और प्रकट साधु की आज्ञा से एक नियम पालने से भी कल्याण हो जाता है।' (स्वा. वा. 4/37)

❀

'आत्यन्तिक मोक्ष ही मोक्ष कहलाता है। ...ऐसा आत्यंतिक मोक्ष तो प्रकट भगवान और प्रकट भगवान के एकांतिक के आश्रय से ही होता है और किसी से नहीं होता।' (स्वा. वा. 5/5)

सद्‌गुरु निष्कुलानंद स्वामी कहते हैं :

'बीजा कहे मुवा पछी मोक्ष रे, वळी प्रभु बतावे छे प्रोक्ष रे ।

ज्यारे एम ज अर्थ जो सरे रे, त्यारे हरि तन शिद धरे रे ॥
ज्ञान विना तो मोक्ष न थाय रे, एम श्रुति-स्मृति सहु गाय रे ।
माटे प्रगट जोइए भगवंत रे, एवुं सर्व ग्रंथनुं सिद्धांत रे ॥
जेम प्रगट रवि होय ज्यारे रे, जाय तम ब्रह्माण्डनुं त्यारे रे ।
जेम प्रगट जळने पामी रे, जाय प्यासीनी प्यास ते वामी रे ॥
जेम प्रगट अन्नने जमे रे, अंतर जठराझाळ विरमे रे ।
तेम प्रगट मले भगवान रे, त्यारे जननुं कल्याण निदान रे ॥
माटे प्रगट चरित्र सांभळवुं रे, होय प्रगट त्यां आवी मळवुं रे ।
माटे प्रगट प्रभु जो न होय रे, न थाय ए निष्पाप कोय रे ॥
जाणो प्रगट मूर्ति भवपाज रे, सहेजे उतारवानो समाज रे ॥

(भक्तचिंतामणि : 164)

'लोग कहते हैं कि मरने के बाद मोक्ष मिलता है और भगवान तो परोक्ष या निराकार हैं। यदि ऐसा है, तो भगवान मनुष्य रूप क्यों धारण करते हैं? श्रुति एवं स्मृति कहती हैं कि ज्ञान के बिना मोक्ष नहीं होता। इसलिए सब ग्रंथों का एक ही सिद्धांत है कि भगवान प्रकट होने चाहिए। क्योंकि जब सूर्य निकलता है तो अंधकार अपने आप दूर हो जाता है। प्यास प्रकट पानी पीने से बुझती है, भूख प्रकट खाना खाने से जाती है। उसी प्रकार, प्रकट भगवान मिलने पर मोक्ष की प्राप्ति होती है। इसलिए प्रकट भगवान के चरित्र कथाओं को सुनो और जब वह प्रकट हों, तो उससे जाकर मिलो। यदि प्रकट भगवान न हों तो प्राणी पापी ही रहता है, निष्पापी नहीं बन पाता। प्रकट मूर्ति को संसार से पार उतारनेवाली समझो, वह बहुत ही सरलता से सबको भवसागर से पार उतार देती है।'

❀

'प्रगट प्रभु के प्रभुना संत रे, तेह विना न उद्धरे जंत रे।'

'प्रकट प्रभु या उनके संत के विना किसी भी जीव का उद्धार नहीं होता।' (नि. का. कल्याणनिर्णय 13-28)

❀

'आत्यंतिक कल्याण कारणे जावुं प्रगट प्रभुने पास ।
मोक्षदायक एह मूर्ति के मोक्षदाता एना दास ॥'

'परम कल्याण के लिए साकार भगवान का आश्रय लेना चाहिए । यह मूर्ति और इनके दास (संत) दोनों मोक्ष प्रदाता हैं।' (नि.का.कल्याणनिर्णय 16-4)

❀

'माटे कल्याणकारी सांभळ्या रे, एक हरि के हरि ना मळ्या रे ।
साची वात तुं मानजे सहि रे, एह बेउ विना मोक्ष नहि रे ॥'

'केवल हरि (भगवान) और हरि के संत ही कल्याणकारी हैं यह सुना है। इस सत्य को तू स्वीकार कर ले कि इन दोनों के बिना मोक्ष नहीं मिलता।' (नि. का. कल्याणनिर्णय. 16-10)

❀

'मळे प्रभु प्रगट प्रमाण रे, कां तो तेना मळेले कल्याण रे ।
तेह विना तो कोटी उपाय रे, आत्यंतिक कल्याण न थाय रे ॥

'प्रकट रूप में या तो भगवान मिलें या ब्रह्मस्वरूप संत मिलें तभी कल्याण होता है। उनके बिना तो करोड़ों उपाय कर लो परन्तु परम कल्याण (मोक्ष) नहीं होता।' (नि. का. कल्याणनिर्णय 2-18)

सद्‌गुरु ब्रह्मानंद स्वामी लिखते हैं :

'आ भवसागर पार उतार, कहि के हरि को दास।'

'हरि (भगवान) और भगवान के सेवक (साधु) इस भवसागर से पार उतारते हैं।'

स्कंदपुराण के विष्णुखंड में श्रीवासुदेव माहात्म्य के वैराग्य-भक्ति निरूपण प्रकरण में इस प्रकार लिखा है :

साक्षाद्‌भगवतः सङ्गात्तद्‌भक्तानां च वेदृशाम् ।
धर्मो ह्येकान्तिकः पुम्भिः प्राप्यते नान्यथा क्वचित् ॥

(वासुदेव माहात्म्य : 25-65)

अर्थात् : 'भगवान या एकांतिक भक्त, जिसके गुण पूर्व श्लोक में वर्णन किए हैं, उनसे संबंध होने पर एकांतिक धर्म प्राप्त होता है । मोक्ष के लिए इसके अतिरिक्त दूसरा कोई उपाय नहीं है।'

श्रीहरि ने इस सिद्धांत की दृढ़ता कराते हुए कहा है : 'इस प्रकार का जो एकान्तिक धर्म है, वह ऐसा निर्वासनिक पुरुष हो, तथा जिसने भगवान में अपनी स्थिति बना रखी हो, उसके वचनों से ही सुलभ हो जाता है, परन्तु

केवल ग्रन्थों में लिखे रहने से वह एकान्तिक धर्म प्राप्त नहीं होता। यदि कोई ऐसी बातें सुनकर ही ठीक इसी प्रकार ज्यों की त्यों बातें करने का प्रयत्न करे, तो उसे ऐसी बात करना भी कठिन हो जाता है! अत: जिसकी **एकान्तिक धर्म में सुदृढ़ स्थिति हो गयी हो उसी के द्वारा एकांतिक धर्म की सिद्धि हो सकती है।** (वच. ग. प्र. 60)

प्रकट को जाने बिना कसर

मानव अनादि काल से पूर्णत्व पाने का प्रयत्न करता रहा है, किन्तु अपूर्णता उसका पीछा नहीं छोड़ती। भगवान के प्रकट स्वरूप को यथार्थ रीति से जान लेने से तथा उनका आश्रय ग्रहण कर लेने से यह अपूर्णता मिटती है। प्रकट भगवान को जाने बिना और उनसे संबंध हुए बिना किसी भी अन्य रीति से यह मिटती नहीं है।

❀

श्रीहरि कहते हैं, '**भगवान के स्वरूप के ज्ञान को समझने में यदि किसी प्रकार की कसर रह गई, तो किसी भी प्रकार आपकी कमी दूर नहीं हो पाएगी।**' (वच. ग. म. 13)

❀

'ब्रह्मादि को भी दुर्लभ ऐसा यह सत्संग प्राप्त होने पर यदि कोई भक्त परमेश्वर को छोड़कर अन्य बातों में अपना चित्त लगाये रखता है, तो इसका कारण यही है कि **इस जीव को भगवान के परोक्षस्वरूप के सम्बंध में जैसी प्रतीति होती है, वैसी दृढ़ प्रतीति भगवान के प्रत्यक्षस्वरूप में नहीं हुई है!** (वच. ग. अं. 2)

❀

'जिस भगवद्भक्त को भगवान का परिपूर्ण निश्चय होता है, तथा काम-क्रोध एवं लोभादि से वह क्षुब्ध भी नहीं होता, तथा अतिशय त्यागी, अति वैराग्यवान एवं अत्यंत आत्मनिष्ठावाला हो, फिर भी यदि वह **प्रत्यक्ष श्रीकृष्ण भगवान की मूर्ति के चिन्तन को छोड़कर, किसी अन्य पदार्थों की इच्छा करता हो, उसे न्यून सुख की ही प्राप्ति होती है।**' (वच. ग. अं. 5)

❀

सद्‌गुरु गुणातीतानंद स्वामी कहते हैं, 'जैसे श्रीजीमहाराज हैं और ये सन्त हैं, उन्हें यथार्थ सत्यरूप से कोई न जाने तो वह निरंतर दुर्भागी है। क्योंकि आषाढी संवत् अढ़ारह सौ छिहत्तर में मेघ खूब बरसा, किन्तु बरसात होने पर भी दुष्काल पड़ा! तथा 'गंगा में नहाया और सिर गीला नहीं किया!' ऐसे, बिना समझ के जो इस सत्संग में हैं वे तो बच्चों व बछड़ों की तरह ही हैं।' (स्वा.वा. 3/35)

❀

'चाहे जैसा पौराणिक हो, अगर उसको प्रत्यक्ष भगवान व **प्रत्यक्ष सन्त की पहचान न हो तो वह शमी के पेड़ के समान है।** उसके संग से ठंडक व सुख नहीं होता है' (स्वा.वा. 3/68)

❀

'ये साधु मनुष्य जैसे प्रतीत होते हैं परन्तु मनुष्य जैसे नहीं हैं और आज तो प्रकट भगवान हैं, प्रकट साधु हैं, प्रकट धर्म है और इस समय में जो उनको नहीं पहचानेगा उसे बाद में (सिर पटक-पटककर) रोना पड़ेगा। ' (स्वा.वा. 4/50)

❀

सद्‌गुरु मुक्तानंद स्वामी ने कहा है :

'परोक्षथी भवतणो पार आवे नहि,
वेद वेदांत कहे सत्य वाणी ।'

अर्थात् 'परोक्ष (निराकार) भगवान भवसागर पार नहीं लगा सकते। वेद और वेदांत इस सिद्धांत की पुष्टि करते हैं।'

❀

'मंगळ रूप प्रगटने मेली, परोक्षने भजे जे प्राणी रे ।
तप तीरथ करे देव देरां, मन न टळे मसाणी रे ॥'

'प्रकट भगवान के मंगलमय स्वरूप को छोड़कर जो प्राणी परोक्ष की भक्ति करता है, वह तप, तीर्थ, देव दर्शन आदि करे, तो भी उसके मन को शांति नहीं मिलती।'

'कोई कहे हरि हो गये, कोई कहे हरि होवन हार ।
मुक्त प्रगट की प्रीछ बिन, भटकत सब संसार ॥'

'कोई कहता है भगवान थे, कोई कहता है वे आएँगे। प्रकट स्वरूप को न जानने के कारण ही वे संसार में भटक रहे हैं।'

शास्त्रों में भगवान के दिव्य चरित्रों का वर्णन किया गया है। केवल उनका पढ़ना या सुनना हमारी कसर को नहीं मिटाता; इसके लिए प्रकट प्रभु की आवश्यकता है।

❀

सद्‌गुरु निष्कुलानंद स्वामी कहते हैं :

'वांची कागळ कोई कंथनो, जेम नार अपार राजी थई ।
पण प्रगट सुख पियुतणुं, अणु जेटलुं आव्युं नहीं ॥'

'पति का पत्र पढ़ने से पत्नी को अपार प्रसन्नता जरूर होती है, परंतु इससे प्रीतम के साक्षात् दर्शन का सुख नहीं मिलता। अर्थात् प्रकट भगवान में ही आनंद है। (नि. का. भक्तिनिधि - 14)

❀

जो मनुष्य प्रकट की भक्ति छोड़कर परोक्ष की भक्ति करता है, वह कैसा दिग्भ्रमित है, इसका वर्णन निष्कुलानंद स्वामी करते हैं :

'जेम कोई फूलवाड़ीनां फूल मेली, आकाश फूलनी आशा करे ।
पार विना परिश्रम पड़े, सार थोडुं ज मळे सरे ॥
तेम प्रगट प्रभुने परहरी परोक्षमां करे प्रतीत ।
ते तो पीयूषनो तरु परहरी, करी छाश पीवा चाहे चित्त ॥'

(नि. का. सारसिद्धि - 47)

'यदि कोई फूलवारी से फूल न तोड़कर आकाश के कुसुम को तोड़ना चाहे, तो वह कितना ही प्रयत्न क्यों न करे, उसका सम्पूर्ण परिश्रम व्यर्थ जाएगा। उसी प्रकार प्रत्यक्ष की भक्ति न कर अप्रत्यक्ष की भक्ति करे, वह अमृत को छोड़कर छाछ पीने के समान है।'

❀

'प्रगट भजी ऋषिपतनी, परोक्ष भज्या ऋषिराय ।
ऋषि पत्नीए हरि राजी कर्या, ऋषि रह्या परितापमांय ॥
प्रभु प्रगटना प्रसंग विना, रही गई एवा मोटाने खोट ।
आज कालना अभागिया, दश विना दिये छे दोट ॥

प्रगट विना छे पांपळां भक्त करे छे भवमांय ।
खरां खांडतां कुसकां, कण नहि निसरे ते मांय ॥
हरि लाडीला लाडु जमी गया, केड़े पड्यां रह्यां पतरावळां ।
जेथी भूख न जाय सुख न थाय, वण समझे चाटे छे सघळां ॥'

(नि. का. सारसिद्धि - 24)

'ऋषि-पत्नी ने प्रकट भगवान की उपासना की। ऋषि ने निराकार की उपासना की। ऋषि-पत्नी ने तो भगवान को प्रसन्न कर लिया, किन्तु ऋषि पछताते रह गए। प्रकट भगवान से संबंध के बिना इतने बड़े भी हानि में रह गए और आज-कल के दुर्भागी इधर-उधर भटकते रहते हैं। प्रकट की भक्ति के बिना सब व्यर्थ है। छिलके और भूसे को कूटते रहने से अन्न नहीं निकलता। भगवान का भक्त लड्डू खाता है और पत्तल पड़ा रहता है। उस खाली पत्तल को चाटते रहने से न तो आनंद आता है, न ही भूख मिटती है।'

❀

सद्‌गुरु ब्रह्मानंद स्वामी कहते हैं :

'प्रगट प्रमाण हरिबिन प्राणी, क्यूँ जहां तहां भटकंता है ।
और उपाय किए ते कोई विधि, आत न भवको अंता है ॥
प्रगट प्रमाण पुराण बतावे, गीता प्रगट कथंता है ।
प्रगट प्रमाण बिना ब्रह्मानंद, सब ही जगत भरमंता है ॥'

'प्रकट भगवान के बिना प्राणी यहाँ-वहाँ भटक रहा है। वह अनेक दूसरे उपाय करता है, किन्तु संसार के दु:खों का अंत नहीं होता। शास्त्र, और गीता भी प्रकट की महत्ता बताते हैं। ब्रह्मानंद स्वामी कहते है कि : प्रकट भगवान के बिना सारा जगत भ्रम के चक्कर में पड़ा हुआ है ।'

भगवान स्वामिनारायण अक्षरधाम में सिधारने के बाद आज किस रूप में प्रकट हैं ?

भगवान स्वामिनारायण लौकिक दृष्टि से इस संसार से संवत् 1886 ज्येष्ठ सुदी दशमी (1 जून, सन् 1830) को अंतर्धान हुए थे। तत्पश्चात् भक्तों को उनकी प्रत्यक्ष मूर्ति के दर्शन नहीं हुए। इस स्थिति में, उन्हें कोई प्रकट कैसे माने? उनके दिव्यधाम में लौट जाने के पश्चात् जीव के

कल्याण के लिए उन्होंने क्या व्यवस्था की?

इन प्रश्नों का उत्तर श्रीहरि ने स्वयं दिया है, 'जिनके पास ज्ञान दृष्टि है, उनके लिए तो भगवान कभी भी परोक्ष नहीं होते, प्रत्यक्ष ही रहते हैं। जब श्रीकृष्ण भगवान ने देहत्याग किया तब उन भगवान की रूक्मिणी आदि पत्नियाँ जल मरीं और अज्ञानी मनुष्यों ने ऐसा जाना कि 'अब उनका नाश हो गया।' किन्तु, जो ज्ञानी पुरुष थे, उन्होंने ऐसा जाना कि 'वे यहाँ से अंतर्धान होकर अन्य स्थान में दिखाई पड़े हैं।' (वच. पं. 7)

यद्यपि श्रीहरि स्थूलरूप से अंतर्धान हो गए, किन्तु अनंतकाल तक जीवों का आत्यंतिक कल्याण करने के लिए दूसरे रूप में **मूल अक्षरब्रह्म द्वारा** इस लोक में प्रकट हैं।

श्रीहरि कहते हैं, 'पुरुषोत्तम भगवान उन सब में कारणभाव से अंतर्यामी रूप में प्रवेश करके रहे हैं, किन्तु जिस प्रकार वे **अक्षर में हैं, उस प्रकार प्रकृतिपुरुष में नहीं हैं**। जिस प्रकार प्रकृतिपुरुष में हैं, उस प्रकार प्रधानपुरुष में नहीं हैं।... उसी प्रकार पुरुषोत्तम भगवान भी जिसके द्वारा जो कार्य करना है, उतने सामर्थ्य के साथ ही उसमें रहते हैं। अक्षर तथा पुरुष-प्रकृति आदि सबमें पुरुषोत्तम भगवान अंतर्यामी रूप से रहे हैं, परंतु पात्र की तारतम्यता से सामर्थ्य में तारतम्य रहता है।' (वच. ग. प्र. 41)

इस प्रकार भगवान समग्र सामर्थ्य से युक्त होकर अक्षरब्रह्म में रहते हैं, किन्तु अन्य मुक्तों में उतने सामर्थ्य से नहीं रहते। इस प्रकार वे अक्षरब्रह्म द्वारा इस पृथ्वी पर सदैव प्रकट रहते हैं।

उन्हों ने आज्ञा दी है कि ब्रह्मरूप होकर परब्रह्म की भक्ति करें तथा उत्तम निर्विकल्प निश्चय के लिए भक्त को चाहिए कि वह धामरूप जो अक्षर है, उससे तादात्म्य स्थापित कर अक्षरभाव से पुरुषोत्तम की उपासना करें। इसका स्पष्ट अर्थ यह है कि ब्रह्मरूप होने के लिए या उत्तम निर्विकल्प निश्चय के लिए धामरूप अक्षर का प्रसंग (अक्षर ब्रह्मरूप संत के साथ आत्मबुद्धि) अनिवार्य है। माया के प्रपंच से मुक्त होकर माहात्म्यज्ञान सहित भगवान के स्वरूप का निश्चय करने के लिए अक्षरब्रह्म का ज्ञान होना आवश्यक है। (वच. पं. 7 और ग. म. 42)

कारण यह है कि भगवान की महिमा को जितना अधिक अच्छी तरह

से अक्षरब्रह्म जानते हैं, उतना और कोई नहीं जानता। निर्विकल्प ज्ञान अन्य मुक्तों के सत्संग से प्राप्त नहीं किया जा सकता। यदि अक्षरब्रह्म के बिना मुक्तों द्वारा उत्तम निर्विकल्प निश्चय सिद्ध होता तो श्रीहरि अपने साथ अक्षरब्रह्म को पृथ्वी पर क्यों लाते? वे अपने साथ अक्षरब्रह्म को लाए, उनकी पहचान प्रत्येक को दी, यह सूचित करता है कि 'अक्षरब्रह्म के द्वारा ही उत्तम निर्विकल्प निश्चय होता है। इसके साथ गुणातीतानंद स्वामी के बाद भी अनंत जीवों का कल्याण होते रहना चाहिए, इस हेतु से अक्षरब्रह्म को शाश्वत रूप से इस पृथ्वी पर रखना श्रीहरि का अनन्य कार्य था, जिससे वे सदा सर्वदा प्रकटरूप से विचरते रहें...

वेदरस में श्रीजीमहाराज ने कहा है, '**वेद उस ब्रह्म का गान करते हैं । मोक्ष का मार्ग भी उसके द्वारा ही हैं।**' (वेदरस पृ. 165)

बोचासणवासी श्री अक्षरपुरुषोत्तम स्वामिनारायण संस्था द्वारा प्रकाशित 'वचनामृत' के आशीर्वाद में ब्रह्मस्वरूप योगीजी महाराज ने लिखा है : '**वचनामृत में संत को ही मोक्ष का द्वार कहा हैं। ऐसे अनादि संत अक्षरमूर्ति गुणातीतानंद स्वामी हैं ऐसा रहस्योद्घाटन स्वयं श्रीहरि ने किया था।**'

अक्षरब्रह्म गुणातीतानंद स्वामी ने कहा है, 'अक्षरधाम का मुक्त हो, स्वाधीन होता हुआ यहीं प्रकट हुआ हो, स्वतन्त्ररूप से धाम में चला जाए ऐसा हो, मगर वैसे को भी यदि सत्पुरुष का संग न हो (कुसंग लग जाए) तो जड़ संज्ञा को पा जाता है।' (स्वा.वा. 3/73)

ऐसे महान मुक्त को भी यदि सत्पुरुष के सत्संग की अपेक्षा है, तो वह सत्पुरुष केवल गुणातीत ही हो सकते हैं। क्योंकि गुणातीत अर्थात् अक्षरब्रह्म, उनको केवल श्रीहरि की ही अपेक्षा है, अन्य किसी की नहीं।

अत: यह स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि भगवान स्वामिनारायण का इस पृथ्वीलोक पर अक्षरब्रह्म द्वारा ही प्राकट्य है। उन्होंने अपने जीवनकाल में अनेक बार गुणातीतानंद स्वामी का परिचय अक्षरब्रह्म के रूप में दिया था, उन घटनाओं को हम 'अक्षरब्रह्म' प्रकरण में देखेंगे। अपने अक्षरधाम गमन के पश्चात् श्रीहरि अक्षरब्रह्म गुणातीतानंद स्वामी के द्वारा प्रकट थे। श्रीहरि के देहावसान के पश्चात् जब लक्ष्मीवाड़ी में उनकी देह का अग्नि संस्कार किया गया। दूसरे दिन प्रात:काल गुणातीतानंद स्वामी ने

शौचादि क्रिया से लौटते समय हरी घास को देखा तो उनके मन में विचार उठा, 'इस घास का जीवन जल है, परंतु हमारे जीवन महाराज थे, वे तो अब नहीं रहे!' इस विचार से ही वे मूर्छित होकर गिर पड़े । तुरंत श्रीहरि उनके समक्ष प्रकट हुए! स्वामी को दर्शन देकर, श्रीहरि ने उनको उठाकर आश्लेष में भरकर कहा, 'स्वामी, शोक क्यों करते हो? **क्या मैं चला गया हूँ ? मैं तो आपमें अखंड रहता हूँ... अखंड रहता हूँ... अखंड रहता हूँ....।'** ऐसा उन्होंने तीन बार कहा। इस प्रकार श्रीहरि ने अक्षरब्रह्म गुणातीतानंद स्वामी द्वारा प्रकट रहकर अनेक मुमुक्षुओं को अपने संबंध का आनंद देकर अक्षरधाम का अधिकारी बनाया।

अक्षरब्रह्म गुणातीतानंद स्वामी के अक्षरधाम लौट जाने के पश्चात्, श्रीहरि **अक्षरब्रह्म** गुरुओं के द्वारा प्रकट रहते हैं। गुणातीतानंद स्वामी ने स्वयं कहा है, **'मैं तो चिरंजीवी हूँ और तुम सबका देहान्त पाँच-दस बरस में हो जाएगा।'** (स्वा. वा. 5/67)

गुणातीत गुरु परंपरा द्वारा भगतजी महाराज, शास्त्रीजी महाराज और योगीजी महाराज के द्वारा श्रीहरि सदैव प्रकट हैं और वर्तमान समय में प्रकट ब्रह्मस्वरूप प्रमुखस्वामी महाराज द्वारा प्रकट होकर अपनी मूर्ति का सुख दे रहे हैं।

भगवान केवल एक ही प्रकट स्वरूप होता है

अक्षरब्रह्म गुणातीत संत के माध्यम से भगवान प्रकट रहते हैं। वे पृथ्वी पर निरंतर विचरण करते हैं और अनंत जीवों के लिए मोक्ष के द्वार खोलते हैं। ऐसे मोक्ष प्रदाता संत केवल एक समय में एक ही होते हैं।

भगवान केवल अक्षरब्रह्म के माध्यम से प्रकट होते हैं और अनादि **अक्षरब्रह्म एक ही है। इसलिए भगवान का प्रकटीकरण केवल एक के द्वारा ही होना स्वाभाविक है।**

श्रीहरि ने वचनामृत में बताया है कि यदि एक से अधिक भगवान हों, तो कैसी विषम स्थिति बन जाती है! श्रीहरि कहते हे कि 'जब बहुत-से भगवान हो जाएँ तो उस दशा में तो जगत की स्थिति एक समान नहीं रह सकती। क्योंकि, एक भगवान कहेंगे कि मैं जगत की उत्पत्ति करूँगा, दूसरे भगवान बोलेंगे कि मैं

जगत का प्रलय करूँगा, तीसरे भगवान कहेंगे कि मैं पानी बरसाऊँगा, चौथे भगवान बताएँगे कि मैं पानी नहीं बरसाऊँगा, पाँचवे भगवान कहेंगे कि मैं मानवधर्मों का प्रचलन पशुओं में करूँगा, जबकि इनसे भिन्न अन्य भगवान यह बोलेंगे कि मैं पशुओं के धर्मों को मनुष्यों में प्रचलित करूँगा। इस प्रकार जगत की एक समान स्थिति नहीं रह पाती। परन्तु देखिए न, संसार में किस किस प्रकार समस्त क्रियाएँ निरन्तर नियमानुसार होती रहती हैं। जगत के संचालन में तिलमात्र भी अन्तर नहीं पड़ता! अतः इन समस्त क्रियाओं के प्रवर्तक तथा सबके स्वामी एक मात्र भगवान हैं।' (वच. ग. अं. 39)

इसी प्रकार यदि भगवान एक से अधिक संतों के माध्यम से अभिव्यक्त हों, तो आत्यंतिक कल्याण की व्यवस्था डगमगा जाएगी।

जैसे राजा के एक से अधिक पुत्र हों, परंतु सिंहासन का अधिकारी तो एक ही गुणी एवं सामर्थ्यवान पुत्र होगा। सभी पुत्र सिंहासन पर नहीं बैठ सकते। इसी प्रकार, प्रकट के सिंहासन पर एक साथ अनेक संत नहीं बैठ सकते।

सद्‌गुणों से विभूषित अनेक संतों-भक्तों से संप्रदाय की शोभा होती है। परंतु भगवान के अनंत कल्याणकारी गुणों के धारक स्वरूप गुणातीत संत तो एक ही होते हैं।

निष्कुलानंद स्वामी ने लिखा है :

'बीजा गुणवान तो घणा मलशे, पण नहि मले हरिना मळेल ।
निष्कुळानंद एवा संत संबंधे, अनंतनां पाप बळेल ॥'

'आपको बहुत सारे गुणज्ञ व्यक्ति मिल जाएँगे, किन्तु भगवान से मिले हों, ऐसे नहीं मिलेंगे। निष्कुलानंद कहते हैं ऐसे संत (भगवान से मिले हुए) के संबंध से अनंत पाप भी भस्म हो जाते हैं।' (नि. का. सारसिद्धि 38/10)

निष्कुलानंद स्वामी ने उपर्युक्त पद में 'हरिना मळेल' शब्दों का प्रयोग किया है। तथा श्रीजीमहाराज ने (वच. वर. 10 और जे. 1) में 'भगवानना मळेल' शब्दों का प्रयोग किया है इस शब्द का अर्थ हे 'भगवान से मिले हुए' परंतु इन शब्दों का तात्पर्य क्या है? पाँच सौ परमहंस श्रीहरि से मिले हुए थे। उनके पास भी रहते थे, तो क्या वे सभी जीवों के आत्यंतिक कल्याण करने की क्षमता रखते थे?

ये परमहंस और हरिभक्त कोई साधारण नहीं थे। अगत्राई गाँव के

पर्वतभाई, गढ़डा के दादाखाचर, नेनपुर के देवजी भक्त आदि श्रीहरि की माला के मनके थे। संतों में जो मूर्तिमान साधु और सत्संग की माता के समान मुक्तानंद स्वामी, महान अष्टांगयोगी गोपालानंद स्वामी, प्रखर विद्वान नित्यानंद स्वामी, अद्‌भुत काव्य शक्तिवाले एवं लोकव्यवहार कुशल ब्रह्मानंद स्वामी और प्रेमसखी प्रेमानंद स्वामी, त्याग-वैराग्य के मूर्तिमंत स्वरूप निष्कुलानंद स्वामी, मृत को जीवित करनेवाले ऐसे व्यापकानंद स्वामी, इन्द्र को चुनौती देकर वर्षा करवानेवाले सच्चिदानंद स्वामी, नरक के कुंड को रिक्त करवा सकनेवाले स्वरूपानंद स्वामी, स्वदेह से बदरिकाश्रम जाने-आनेवाले संतदास (समाधिवाले), ऐसे अनेक गुणों एवं सामर्थ्य से युक्त परमहंस श्रीहरि से मिले थे। 'हरिना मळेल' लाखों हरिभक्तों और पाँच सौ परमहंसों द्वारा ब्रह्म होने की या आत्यंतिक कल्याण की बात नहीं कही गई है।

यदि यह बात स्थूल रीति से श्रीहरि से 'मिलने' (मळेल) की हो और संतों-हरिभक्तों द्वारा आत्यंतिक कल्याण की बात हो, तो उनके पीछे मोक्ष का मार्ग बंद हो जाएगा, किन्तु श्रीहरि का यह अभिप्राय नहीं था। श्रीहरि को तो अनंत जीवों के लिए आत्यंतिक कल्याण का मार्ग सदा खुला रखना था। इसलिए, 'हरिना मळेल' का यहाँ यह अर्थ नहीं है कि 'श्रीजीमहाराज से स्थूल रूप से मिला हुआ।' 'हरिना मळेल' का यह अभिप्राय है - जिसका श्रीहरि के साथ अनादिसिद्ध संबंध है, यानी जिसका श्रीहरि से आंतरिक निरंतर संबंध है तथा जिसके द्वारा श्रीहरि अपने आपको पूर्णतया अभिव्यक्त करते हैं। ऐसा संबंध तो एकमात्र अक्षरब्रह्म से ही है, दूसरे किसी से नहीं है। अक्षरब्रह्म एक ही है। अत: भगवान केवल एक के द्वारा ही प्रकट या अभिव्यक्त होते हैं।

गुणातीतानंद स्वामी ने स्पष्ट किया है, 'जिस समय में जिसके हाथ से कल्याण करने का काम भगवान ने सौंपा हो उसी से कल्याण होता है। जैसे परीक्षित को शाप दिया गया तब व्यासजी आदि बहुत से बड़े सन्त थे परन्तु शुकजी आए तब कल्याण हुआ।' (स्वा. वा. 4/49)

अक्षरब्रह्म गुणातीतानंद स्वामी ने अहमदाबाद में केशवप्रसादजी महाराज से कहा, 'जैसे तुम्हारे पिता ने खजाने की चाबी तुम्हें सौंप दी है, उसी तरह स्वामिनारायण ने आत्यंतिक कल्याण की चाबी मुझे सौंपी हैं !'

पाँचसौ परमहंसों में से श्रीहरि ने केवल गुणातीतानंद स्वामी को मोक्ष

की चाबी दी। यह मोक्ष की चाबी आज तक गुणातीत गुरुपरम्परा द्वारा सुरक्षित है। उपदेशों से गुरु आत्यंतिक कल्याण की प्रतीति कराते हैं और अनन्त जीव उनके संबंध से ब्रह्मरूप होकर अक्षरधाम के अधिकारी बन जाते हैं। अन्य किसी संप्रदाय में गुरुओं की ऐसी आध्यात्मिक गुणातीत परंपरा नहीं मिलती।

गुणातीतानंद स्वामी के जीवनकाल में और बाद के समय में, इस संप्रदाय का इतिहास इस बात का साक्षी है कि साधुतायुक्त, अलौकिक स्थितिसंपन्न, निरावरण स्थिति और आश्चर्यकारक ऐश्वर्य से पूर्ण अनेक संत संप्रदाय में मौजूद थे। फिर भी श्रीहरि ने अपने आपको केवल एक परम एकांतिक साधु के स्वरूप में प्रकट रहने का वादा किया और वे मोक्ष के द्वाररूप संत के द्वारा प्रकट रहे! बहुत सारे महान पुरुष श्रीहरि से जुड़े और श्रीहरि ने दूसरों को संत से संबंध जोड़ने की ही प्रेरणा दी।

इस गुरुपरंपरा में श्रीहरि उत्तरोत्तर गुणातीत स्वरूप के माध्यम से प्रकट होते रहे हैं। उस मोक्ष के द्वाररूप संत का जीवन और कार्य उसके 'अद्वितीय' होने का स्वयं साक्षी बना रहा।

इस प्रकार श्रीहरि आज तक एक ही गुणातीत संत के द्वारा इस पृथ्वी पर प्रकट रहे हैं। भविष्य में भी एक ही संत द्वारा प्रकट रहेंगे, ऐसा श्रीहरि का स्पष्ट वरदान है। जिसे, जिस समय जो प्रकट स्वरूप मिले उस स्वरूप में अनन्यभाव रखना चाहिए, इसे स्पष्ट करते हुए उन्होंने कहा है, 'जिस रूप में स्वयं को भगवान के दर्शन हुए हों, उनके साथ जिसे पतिव्रता-सी दृढ़ प्रीति हो गई हो, उसे तो भगवान के अतिरिक्त अन्य बड़े-बड़े मुक्त साधुओं के प्रति भी प्रीति नहीं हो सकती' (वच. ग. अं. 16)

गुणातीत संत के लक्षण

मुमुक्षुओं को गुणातीत संत के लक्षण जान लेने चाहिए, जिसके द्वारा श्रीहरि प्रकट रहते हैं। शास्त्रों में गुणातीत संत के जो लक्षण बताए गए हैं, उनके अनुसार मुमुक्षु को संत को खोजना और जानना चाहिए, तत्पश्चात् अपने आत्यंतिक कल्याण के लिए उनका आश्रय ग्रहण कर लेना चाहिए। यदि कोई वेश से, वाक्चातुर्य से, शास्त्रों के वाच्यार्थ ज्ञान से, लौकिक कला-कौशल से यानी ऐसे अन्य बाह्य लक्षणों से अथवा किसी सिद्धि के

चमत्कारों से प्रभावित होकर किसी साधु को 'प्रकट स्वरूप' मानकर उसका संग करेगा, तो अक्षरधाम के बदले उसे नरक की प्राप्ति होगी।

सद्‌गुरु निष्कुलानंद स्वामी कहते हैं :

साचा संतनां अंग एंधाण रे, जोई लेवा जीवडिये ।
जेने मळवे मान्युं कल्याण रे, तेने जोवा घडिघडिये ॥

'जीव को चाहिए कि वह सच्चे संत के गुणों को जाने। यह जानने के बाद ही कल्याण संभव है। अतः ऐसे संत का संग करना चाहिए।'

(चोसठ पदी - 9)

सद्‌गुरु ब्रह्मानंद स्वामी कहते हैं:

'जडबुद्धि जीव, प्रभुपदने इच्छे तो कर संतनुं पारखुं ।
रंगपीतपणे, सोनुं ने पीत्तल न होय एक सरखुं ॥'

'हे जडबुद्धि जीव! यदि तुझे भगवान को पाने की इच्छा है, तो भलीभाँति संत की परख कर। क्योंकि सोना और पीतल दोनों का रंग समान है, किन्तु गुण अलग-अलग होते हैं।'

इसलिए संत की शरणागति में जाने से पूर्व उनके लक्षणों की परख कर लेना अनिवार्य है। शास्त्रों में जहाँ-जहाँ संतों की महिमा कही गई है, वहाँ-वहाँ संत के लक्षणों को भी बताया गया है।

गीता के दूसरे अध्याय में स्थितप्रज्ञ के लक्षण, बारहवें अध्याय में अपने प्रिय भक्त के लक्षण, चौदहवें अध्याय में गुणातीत संत के लक्षण बताए गए हैं। रामचरितमानस में तुलसीदासजी भगवान तुल्य संत के लक्षण बताते हुए कहते हैं :

'नारी नयन सर जाहि न लागा,
घोर क्रोध तम निशि जो जागा ।
लोभ पास जेहि गर न बंधाया,
सो नर तुम्ह समान रघुराया ॥'

(किष्किन्धा काण्ड, दोहा 20 के बाद प्रथम चौपाई)

श्रीमद्‌भागवत में कहा है :

तस्माद् गुरुं प्रपद्येत जिज्ञासुः श्रेय उत्तमम् ।
शाब्दे परे च निष्णातं ब्रह्मण्युपशमाश्रयम् ॥ (भा. 11-3-21)

अर्थात् 'जिज्ञासु को अपने श्रेय के लिए शब्द ब्रह्म के ज्ञान में विशेषज्ञता और ब्रह्म चेतना द्वारा जिसने उपशम स्थिति प्राप्त कर ली है, ऐसे गुरु की शरण ग्रहण करनी चाहिए।'

सर्वशास्त्रों के साररूप वचनामृत में स्थान-स्थान पर गुणातीत संत के लक्षण बताए गए हैं। उनमें से कुछ अवतरण प्रस्तुत हैं :

'भगवान के समान सेवा करने योग्य सन्त कैसे होते हैं? तो जो सन्त इन्द्रियों तथा अन्त:करण आदि के मायिक गुणों की क्रियाओं पर स्वयं अंकुश रखते हैं, किन्तु उनसे पराभूत नहीं होते और भगवान सम्बंधी क्रिया में जुटे रहते हैं तथा पंचव्रतों का दृढ़तापूर्वक पालन करके स्वयं को ब्रह्मरूप समझते हुए पुरुषोत्तम भगवान की उपासना में तत्पर रहते हैं, **उन्हें मनुष्य और देव सदृश नहीं मानना। क्योंकि वैसी क्रिया देवता और मनुष्य द्वारा नहीं हो पातीं। ऐसे सन्त मनुष्य होने पर भी भगवान के समान सेव्य होते हैं।**' (वच. ग. अं. 26)

❀

उसी प्रकार शास्त्रों में वर्णित निष्काम, निर्लोभ, निर्मान, नि:स्वाद और नि:स्नेह आदि सन्त के लक्षण आपको जहाँ भी देखने को मिले, वहाँ समझना कि **ऐसे लक्षणवाले सन्त का भगवान के साथ साक्षात् सन्बंध होता है।** (वच. ग. अं. 27)

❀

'देहाभिमानरहित, वैराग्यवान ऐसे महान भगवद्भक्त साधु के साथ जोड़ देना चाहिए। जो यह मानते हों कि भगवान के अल्पवचन के पालन का भंग, बड़े वचन के पालन में ही भंग है और ऐसे भगवद्भक्त महान साधु के साथ अपने जीव को जोड देना तथा मन, कर्म और वाणी से उन्हीं के वचन में रहना। ' (वच. ग. अं. 38)

❀

'जब तक वह वर्ण अथवा आश्रम के घमंड से साथ घूमता-फिरता है तब तक उसमें साधुता आती ही नहीं। इसीलिए, देह तथा देह के सम्बन्धियों के साथ रहनेवाले अहंता तथा ममता दोनों का परित्याग करके, अपनी आत्मा को ब्रह्मरूप मानकर तथा समस्त वासनाओं का त्याग करके जो

पुरुष स्वधर्मरत रहते हुए भगवान का भजन करता है, वह साधु कहलाता है' (वच. ग. प्र. 44)

❀

'स्वधर्म, ज्ञान, वैराग्य तथा माहात्म्यज्ञान सहित भगवद्भक्ति करनेवाले **भगवान के एकान्तिक साधु के सत्संग से भागवतधर्म का पोषण होता है तथा ऐसे साधु के प्रसंग (अत्यंत आत्मबुद्धि-प्रीति) से ही जीवों के लिए मोक्ष का द्वार भी खुल जाता है।'** (वच. ग. प्र. 54)

❀

'जिसका मन भगवान में आसक्त हुआ हो, किन्तु विषयों के सम्बंध से वह ठंडा और गरम नहीं होता, उसीको साधु जानना चाहिए।'

(वच. ग. म. 23)

गुणातीतानंद स्वामी ने वड़वानल के समान संत के लक्षण बताते हुए कहा है कि 'जिस संत का वर्तन '**पुष्पहाराय सर्पाय**' इस प्रकार होता है, तथा जो भगवान की मूर्ति को निरंतर धारण करके रखते हैं तथा आत्मा-परमात्मा का वेग लग गया है एवं अनेक मुमुक्षुओं को भगवान का भजन करवाते हैं तथा स्वयं पवित्र रहते हैं तथा अल्पमात्र आज्ञा का उल्लंघन नहीं करते, ऐसे लक्षणवाले संत को वडवानल संत कहते हैं।' (स्वा.वा. 5/143)

इसके अतिरिक्त, वचनामृत ग. प्र. 27, ग. अं. 35 आदि में भी उस गुणातीत संत के लक्षण बताए हैं, जिनमें भगवान स्वयं को अभिव्यक्त करते हैं। इसी प्रकार सच्चे साधु के लक्षण ग. प्र. 36, 37 में बताए हैं। अनेक वचनामृतों में सच्चे भक्त एवं एकांतिक भक्त के लक्षण बताए हैं।

सद्गुरु निष्कुलानंद स्वामी ने चौसठ पदी में तथा सद्गुरु मुक्तानंद स्वामी, ब्रह्मानंद स्वामी आदि परमहंसों ने अपने-अपने कीर्तनों में संत के लक्षण स्पष्ट रूप से कहे हैं।

गुणातीत संत की महिमा - श्रीहरि के शब्दों में

जिसके द्वारा भगवान अखंड प्रकट रहकर अनंत जीवों का आत्यंतिक कल्याण करते हैं, ऐसे गुणातीत संत की महिमा वचनामृत, स्वामी की बातें, अन्य शास्त्रों, परमहंसों और अन्य भक्त कवियों ने अपने

भक्ति पदों और कीर्तनों में बारबार गाई है। यहाँ उन अवतरणों को यथावत् लिया गया है।

'ऐसी निष्ठावाले सन्त की चरणरज को हम भी सिर पर चढ़ाते हैं, और उसे दुःखी करने से मन में डरते हैं तथा उसके दर्शन के भी इच्छुक रहते हैं। ...जो भगवान के यथार्थ भक्त हैं, उनका दर्शन तो भगवान के दर्शन के समान है। उनके दर्शन से तो अनेक पतित जीवों का उद्धार होता है, ऐसे ये महान हैं।' (वच. ग. प्र. 37)

❀

'ऐसे सन्त के लिए भगवान अथवा उनका धाम अणुमात्र भी दूर नहीं हैं।... ऐसे जो सन्त है उनका दर्शन हुआ तो यह समझ लेना कि 'मुझे साक्षात् भगवान का दर्शन हुआ है।'' (वच. सा. 10)

❀

' जिसमें ऐसी साधुता होती है, उसे **पुरुषोत्तम भगवान के बीच कोई दूरी नहीं रहती।'** (वच. ग. प्र. 44)

❀

'इस प्रकार के ज्ञान, भक्ति, वैराग्य आदि अनेक शुभगुणों से सम्पन्न भक्त के हृदय में ही भगवान निवास करते हैं। फिर ऐसा भक्त ही भगवान के प्रताप से अनन्त प्रकार के ऐश्वर्यों को प्राप्त करता है तथा **असंख्य जीवों का उद्धार करता है।** ऐसा सामर्थ्य रखने पर भी वह अन्य जीवों द्वारा किए गए मान एवं अपमान को सहन करता है। ऐसी सहनशीलता भी एक प्रकार का सामर्थ्य ही है, क्योंकि समर्थ होते हुए भी क्षमा करना, किसी के बस की बात नहीं होती। अतः ऐसी विशाल दृष्टिवाले को अति महान समझना।

यद्यपि वह समर्थ तो हैं, परन्तु कैसे समर्थ? तो उसके नेत्रों द्वारा देखनेवाले स्वयं भगवान ही हैं। अतः ब्रह्मांड में जितने प्राणी हैं, उन सबके नेत्रों को प्रकाशवान करने में वे समर्थ होते हैं। उनके पैरों से चलनेवाले भगवान हैं। अतः वे ब्रह्मांड के समस्त जीवों के पैरों में चलने की शक्ति देने में समर्थ होते हैं। इसी प्रकार, सन्त की समस्त इन्द्रियों में भगवान का निवास है, इसलिए वे ब्रह्मांड के समस्त जीवों की इन्द्रियों को प्रकाश देने में समर्थ होते हैं। अतएव, ये सन्त तो समस्त जगत के आधार-रूप हैं।' (वच. ग. प्र. 27)

'भगवान के सन्त तो भव-ब्रह्मादि देवों से भी अधिक महिमामय हैं।' (वच. ग. म. 59)

❀

'जब वह भगवान का भजन करके इस प्रकार का (उत्तम) साधु हुआ, तब ऐसे साधु से बड़ी कोई अन्य पदवी नहीं है! जैसे कोई राजा तथा रानी हो, तब जितनी परिधि में राजा का राज्य होगा, उतनी ही परिधि में रानी का राज्य भी कहलाएगा और जैसे राजा का हुक्म चलता है, उसीके समान रानी का भी हुक्म चलेगा। वैसे ही **भगवान का जैसा प्रताप है, वैसा ही उस साधु का भी प्रताप रहेगा।'** (वच. ग. म. 22)

❀

'जो सत्पुरुष होते हैं, वे समुद्री जल-जैसे खारे जीवों को भी मीठा कर डालते हैं।... तथा वड़वानल अग्नि-जैसे सन्त तो सिद्धदशावाले भगवान के परम एकान्तिक साधु हैं।' (वच. वर. 3)

उपर्युक्त वचनामृतों का अवलोकन करने से स्पष्ट हो जाता है कि गुणातीत संत की महिमा भगवान के समान ही है। भगवान का भजन करने से, आज्ञापालन करने से, उनको प्रसन्न करने से और सत्संग करने से जो फल मिलता है, वही फल गुणातीत संत की आज्ञा मानने, उन्हें प्रसन्न करने और उनके सत्संग से मिलता है।

❀

श्रीहरि कहते हैं, 'यदि कोई इन साधु की सेवा करता है, तो उसका फल भगवान की सेवा करने तुल्य प्राप्त होता है।' (वच. ग. अं. 35)

❀

'उसी प्रकार जो पुरुष भगवान तथा उनके उत्तम लक्षणवाले सन्त की अत्यन्त ही प्रेमपूर्वक एक समान सेवा करता है, वह यदि कनिष्ठ भक्त हो, तथा दो जन्मों, चार जन्मों, दस जन्मों और एक सौ जन्मों के बाद भी यदि उत्तम भक्त सदृश होनेवाला हो, **तो वह इसी जन्म में उत्तम भक्त हो जाता है। यह भगवान तथा उन भगवान के भक्त की एकसमान सेवा करने का फल है।'** (वच. वर. 5)

❀

'जिस पर अतिशय महान संत की प्रसन्नता रहती है, उसके चाहे जितने भी **मलिन संस्कार हों, वे भी नष्ट हो जाते हैं** और उनके प्रसन्न होने से **रंक भी राजा हो जाता है। इसके साथ ही चाहे जितने अनिष्टकारी प्रारब्ध हो सब शुभ हो जाते हैं और उसके सिर पर चाहे जितना बड़ा विघ्न उपस्थित होनेवाला हो, सब नष्ट हो जाता है।'** (वच. ग. प्र. 58)

❀

'सत्पुरुष में दृढ़ प्रीति ही आत्मदर्शन का साधन है। सत्पुरुष की महिमा जानने का भी यही साधन है। परमेश्वर के साक्षात् दर्शन सुलभ होने का भी यही साधन है।' (वच. वर. 11)

❀

अनेक वचनामृतों में लिखा है कि गुणातीत संत के प्रसंग (संबंध) से, सेवा से, प्रसन्नता से ही शुभ संस्कार आते हैं, भगवान से प्रीति होती है, बुरा स्वभाव अच्छा बन जाता है, वासनाएँ जल जाती हैं, धर्म-ज्ञान आदि अनंत कल्याणकारी गुणों से युक्त भक्ति का उदय होता है और संत के द्वारा जीव अति उच्च स्थिति प्राप्त कर लेता है। संक्षेप में, हम गुणातीत संत से वह सब प्राप्त कर लेते हैं, जिसकी हम कामना करते हैं।

इसलिए श्रीहरि कहते हैं, **'सन्त का सत्संग** जो मुझे मिला है, वह तो मुझे **परम चिन्तामणि** तथा **कल्पवृक्ष** प्राप्त हुआ है।' (वच. ग. प्र. 14)

गुणातीत संत की महिमा - अक्षरब्रह्म गुणातीतानंद स्वामी के शब्दों में

गुणातीतानंद स्वामी कहते हैं, 'सन्त बड़े हैं, भगवान से मिले हुए हैं, भगवान की आज्ञा में रहते हैं, कष्ट आन पड़े तो सहन करते हैं, भगवान को उस सन्त ने जीत लिया है, सन्त जो कहे, भगवान उसी प्रकार करते हैं और उसी प्रकार फिरते हैं, वे ही भगवान के अभिप्राय को जानने वाले हैं, मोक्ष के दाता भी वे ही हैं, उनके दर्शन में भगवान के दर्शन होते हैं, उनकी पूजा से भगवान पूजे जाते हैं, गर्भवास, यमपुरी और लख-चौरासी के कष्ट मिटाने वाले वे ही हैं और विहद जो अक्षरधाम उसे प्राप्त करानेवाले भी सन्त ही हैं, वे भगवान के साधर्म्य को प्राप्त कराते हैं, ऐसे ये बड़े सन्त हैं।'

'उनके बिना भगवान का काम नहीं चलता। उनके दर्शन से पंच महापाप जल जाते हैं। उनकी इन्द्रियों की क्रिया से ब्रह्माण्ड सचेतन होते हैं। उनसे काल, कर्म और माया थर-थर कांपते हैं। जिस तरह देह की पूजा से जीव की पूजा हो जाती है, उसी तरह इस साधु की पूजा करने से भगवान की भी पूजा हो जाती है।'

'वे अन्नदाता है, अन्तर्यामी हैं, सर्वज्ञ हैं, उनके किए सब कुछ होता है, और वे मनुष्य जैसे दिखते है किन्तु मनुष्य जैसे नहीं है। भगवान उनके साथ (उनमें ही) रहते हैं। वे अविनाशी धाम को प्राप्त कराते हैं। वे कर्ता होते हुए भी अकर्ता हैं। वृक्ष की तरह उनकी देह दूसरों के लिए है। सन्त के लक्षण तो 'कामिल, काबिल सब हुन्नर तेरे हाथ' ऐसे हैं। इस प्रकार महिमा समझने की आज्ञा है।' (स्वा. वा. 4/143)

❀

'सबसे अधिक बड़े तो सन्त हैं। उनकी महिमा कही, कि सबसे बड़ी पृथ्वी, उससे अधिक जल, तेज, वायु, आकाश, अहंकार, महतत्त्व, प्रधानपुरुष तथा मूल प्रकृतिपुरुष और अक्षर पर्यन्त सब एक दूसरों से अधिक बड़े या श्रेष्ठ हैं। उन सबके आधार भगवान है। ऐसे बड़े परमेश्वर को सन्त अपने हृदय में अखण्ड धारण किए बिराजे हैं, अतः सन्त सबसे बड़े है।' (स्वा. वा. 2/111)

गुणातीत संत की महिमा - परमहंसों के पदों में

सद्गुरु निष्कुलानंद स्वामी ने ऐसे परम एकांतिक संत की महिमा पुरुषोत्तमप्रकाश, भक्तचिंतामणि, चौसठपदी तथा अन्य कीर्तनों में बहुत गाई है - लिखी हैं। पुरुषोत्तम प्रकाश से :

'संत बोले ते भेळो हुं बोलुं रे, संत न भूले हुंये न भूलुं रे ।
संत वात भेळी करुं वात रे, एम संतमां छउं साक्षात् रे ॥
संत जुवे ते भेळो हुं जोऊं रे, संत सुता पछी हुं सोउं रे ।
संत जागे ते भेळो हुं जागुं रे, संत जोई अति अनुरागुं रे ॥
संत जमे ते भेळो हुं जमुं रे, संत भमे ते केड्ये हुं भमुं रे ।
संत दुःखाणे हुं दुःखाणो रे, एह वात सत्य जन जाणो रे ॥

संत हुं ने हुं ते वळी संत रे, एम श्रीमुखे कहे भगवंत रे ।
संत मानजो मारी मूरति रे, एमां फेर नथी एक रति रे ॥'

भगवान अपने श्रीमुख से कहते हैं: 'संत के मुख से मैं स्वयं बोलता हूँ, उसकी वाणी में मेरी ही बातें होती हैं, संत की आँखों से मैं ही झाँकता हूँ, संत के साथ ही मेरी प्रत्येक क्रिया जुड़ी हुई है, उसे दुःख देने से मैं दुःखी होता हूँ, मेरे और संत के बीच रती मात्र भी अंतर नहीं है।'

❀

चौसठ पदी का पद :

'एवा संत जम्ये जम्या श्याम, जम्या सहु देवता ।
जम्या सर्वे लोक सर्वे धाम, सहु थया तृप्तता ॥
एवा संत मळ्ये मळ्या स्वामी, खामी कोये न रही ।
कहे निष्कुळानंद शीश नामी, साची सहुने कही ॥'

(नि. का. चौसठपदी - 3)

'जब गुणातीत संत भोजन करते हैं, तो उनके भोजन करने से भगवान और सभी देवता, सभी लोक, सभी धाम के मुक्त तृप्त हो जाते हैं। ऐसे संत का मिलन, साक्षात् भगवान का मिलन है। उनकी प्राप्ती के बाद कुछ पाना शेष नहीं रहता। विनयपूर्वक शीश झुकाकर निष्कुलानंद स्वामी कहते हैं, मैं आपको सब सत्य ही कह रहा हूँ।'

❀

भक्तचिंतामणि का पद :

'संतकृपाए सुख ऊपजे, संत कृपाथी सरे काम ।
संतकृपाथी पामीए, पूरण पुरुषोत्तम धाम ॥
संत कृपाथी सद्मति जागे, संत कृपाथी सद्गुण ।
संत कृपा विना साधुता, कहोने पाम्या कुण ॥
संत सेव्या तेणे सर्व सेव्या, सेव्या श्रीहरि भगवन ।
ऋषि मुनि सेव्या देवता, जेणे संत कर्या राजी मन ॥
कामदुघा कल्पतरु, पारस चिंतामणी चार ।
संत समान एके नहि, में मनमां कर्यो विचार ॥'

(भक्तचिंतामणि : 2)

'संतकृपा से सुख मिलता है और संत कृपा से ही काम सिद्ध होते हैं। संत की कृपा से पूर्ण पुरुषोत्तम के धाम की प्राप्ति होती है। संतकृपा से ही उत्तमबुद्धि एवं सद्‌गुणों की प्राप्ति होती है, बिना संतकृपा क्या किसी को साधुता प्राप्त हुई है? संत की सेवा करने से सब की सेवा हो जाती है और भगवान की भी सेवा हो जाती है। जिसने संत को प्रसन्न कर लिया, उसने ऋषि-मुनि और देवताओं की सेवा कर ली। कामधेनु, कल्पतरु, स्पर्शमणी और चिंतामणि इन चारों में से एक भी संत के समान नहीं हैं, ऐसा मेरा निश्चित विचार है।' (ये चारों परमार्थिक सुख नहीं देते, केवल संसारिक वस्तुओं एवं कामनाओं की पूर्ति कर सकते हैं। किन्तु संत तो समस्त विकारों को दूर कर भगवान से भी मिला सकते हैं। इसलिए संत इनसे भी महान हैं।)

धन्य धन्य ए संत सुजाणने, जेनुं ऊलटी पलट्युं आप
संत ते स्वयं हरि ।
आप टळी मळ्या भगवानमां, जेना आपमां हरिनो व्याप
संत ते स्वयं हरि ॥

(सद्‌गुरु निष्कुलानंद स्वामी रचित कीर्तन)

'वास्तव में संत बहुत भाग्यवान है, जिसका अंतर पूर्णतया हरिरूप में बदल गया है, संत स्वयं भगवान हैं। मुझे उस संत का संग मिला है जिसमें हरि पूर्णतः व्याप्त हैं। संत स्वयं भगवान हैं।'

सद्‌गुरु मुक्तानंद स्वामी :

'ऐसे मेरे जन एकांतिक, तेही सम और न कोई ।
मुक्तानंद कहत युं मोहन, मेरो हि सर्वस्व सोई ॥'

'मेरे एकांतिक संत के समान कोई और नहीं हो सकता। मोहन-भगवान कहते हैं, मेरे लिए वह सर्वस्व है।'

'मुक्तानंद महा संतने, प्रभु प्रगट पासे रे,
अनुभवीने अंतरे रहे राम वासे रे ।'

'प्रकट भगवान महा संत के निकट हैं। जिसको अनुभूति हो गई है उसके अन्तर में भगवान सदा वास करते हैं।'

सद्‌गुरु ब्रह्मानंद स्वामी :

'ब्रह्मानंद कहे संतकी सोबत, मिलत हे प्रगट मुरारी ।
जगतमांही संत परम हितकारी ॥'

'संत का संग ऐसा है जैसे प्रकट भगवान मिले हों। इस संसार में संत ही परम हितकारी हैं।'

सद्‌गुरु प्रेमानंद स्वामी :

'आठे पहोर आनंद जेना अंगमां,
रमे गोविंद एवा संतना रे संगमां'...

'आठों पहर जिसके अंग में आनंद समाया रहता है वह संत है और ऐसे संत में भगवान रहते हैं।'

'एवा संत हरिने प्यारा रे,
तेथी घडीए न रहे वा'लो न्यारा रे'...

'वह (संत) हरि को (भगवान को) अतिशय प्रिय है और भगवान उससे एक क्षण के लिए भी दूर नहीं होते।'

'एवा संतनी बलिहारी रे,
जेने गुणे रीझ्या गिरधारी रे'.....

'ऐसे संत धन्य हैं, जिनके गुणों से भगवान प्रसन्न हो गए।'

गुणातीत संत की महिमा - प्रसिद्ध संत कवियों के पदों में

प्रसिद्ध संत कवि नरसिंह मेहता, मीरांबाई, प्रीतम, दयाराम, सूरदास, तुलसीदास आदि ने गुणातीत संत की अति अपार महिमा गाई है। उन्हें भगवान के तुल्य बताया है।

नरसिंह मेहता :

'प्राण थकी मुने वैष्णव वहाला, रात दिवस हृदे भावुं रे ।
तप तीरथ वैकुंठ पद मेली, मारा हरिजन होय त्यां हुं आवुं रे ॥
लक्ष्मीजी अर्धांगना मारी, ते मारा संतनी दासी रे ।
अडसठ तीरथ मारा संतने चरणे, कोटि गंगा कोटि काशी रे ॥'

'मुझे अपने जीवन से भी अधिक वैष्णव (भक्त) प्यारे हैं। रात-दिन मैं उनका ही चिंतन करता हूँ। तप, तीर्थ और वैकुंठ को एक ओर छोड़कर मैं वहाँ जाता हूँ, जहाँ मेरे भक्त होते हैं। मेरी अर्धांगिनी लक्ष्मीजी मेरे संतों की दासी है

(संतों की सेवा करती हैं)। मेरे संतों के चरणों में सभी 68 तीर्थ निवास करते हैं। मेरे संतों के चरण कोटि गंगा, कोटि काशी के समान पवित्र हैं।'

तुलसीदास ने कहा है :

'रामसिंधु घन सज्जन धीरा, चंदनतरु हरि संत समीरा ।
मोरे मन प्रभु अस बिस्वासा । राम ते अधिक राम कर दासा ॥'

(उत्तरकाण्ड : दोहा 119 के बाद की चौपाई)

काकभुशुण्डिजी गरुडजी से कह रहे हैं कि 'हे स्वामी ! मुझे ऐसा विश्वास है कि श्रीराम के दास श्रीरामजी से भी बढ़कर हैं। श्रीराम को यदि सिंधु मानें, तो धीर संत पुरुष मेघ हैं। श्रीहरि को चंदन का वृक्ष मानें, तो संत पवन-वायु हैं।

प्रीतमदास :

'संत हरिजन एक है, भिन्न न मानो कोई ।
प्रीतम सदगुरू मिले, ताकु मालूम होय ॥'

संत और भगवान एक हैं। किसी को उन्हें पृथक्-पृथक् नहीं मानना चाहिए। प्रीतमदास कहते हैं जिसे सद्गुरु मिल जाए, उसे अभिन्नता की अनुभूति हो जाती है।

कबीरदासजी :

'साहब का घर संतनमांही, संत साहब कछु अंतर नाहीं।'

'भगवान संत के हृदय में निवास करते हैं। संत और भगवान एक हैं, अभिन्न हैं।'

गुणातीत संत की महिमा - विभिन्न शास्त्रों में

'यस्य देवे पराभक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ ।
तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः ॥'

अर्थात् : 'जीव की जैसी भक्ति परोक्ष देव के प्रति है, यदि वैसी भक्ति प्रकट गुरुरूप हरि के प्रति हो, तो वह सभी अर्थों को प्राप्त कर लेगा।' (श्वेताश्वतरोपनिषद् : 6-23)

'साधवो हृदयं मह्यं साधूनां हृदयं त्वहम् ।
मदन्यत्ते न जानन्ति नाहं तेभ्यो मनागपि ॥'

अर्थात् : 'साधु मेरे हृदय हैं और मैं संत का हृदय हूँ। जैसे वह मेरे सिवा और किसी को नहीं जानते, वैसे ही मैं भी उनके सिवा किसी और को नहीं जानता।' (श्रीमद् भागवत : 9-4-68)

'निरपेक्षं मुनिं शान्तं निर्वैरं समदर्शनम् ।
अनुव्रजाम्यहं नित्यं पूयेयत्यङ्घ्रिरेणुभिः ॥'

अर्थात् : 'मैं निरपेक्ष, मननशील, शांतचित्त, वैर रहित, समदर्शी संतों के पीछे-पीछे निरंतर चलता हूँ, जिससे मैं उनकी चरण-धूलि प्राप्त कर सकूँ और पवित्र हो जाऊँ।' (श्रीमद् भागवत : 11-14-16)

क्या भगवान पवित्र नहीं हैं ? भगवान तो पवित्र ही हैं, किन्तु संत के अपार माहात्म्य को बताने के लिए अतिशयोक्ति अलंकार का प्रयोग किया गया है।

गुणातीत संत : भगवान का प्रकट स्वरूप एवं उनके सेवक

शास्त्रों में, भगवान स्वामिनारायण और संत कवियों ने गुणातीत संत को भगवान के समान, तथा भगवान से भी अधिक बताकर उनकी अपरंपार महिमा बताई है, यह हमने देखा। गुणातीत संत श्रीहरि की सदा दासभाव से स्वामी-सेवकभाव से उपासना करते हैं। गुणातीतानंद स्वामी अपना परिचय सब के देते हुए कहते हैं कि हम तो सभी के स्वामी हैं। परंतु पुरुषोत्तम के दास के रूप में देते हैं।

सद्गुरु ब्रह्मानंद स्वामी लिखते हैं :

'साम्रथ पाय कबु नहि छलकत, ज्युं उदधि के तोय ।
ब्रह्मानंद कह्यो श्रीमुख से, ऐसो जन प्रिय मोय ॥'

'यद्यपि अतिशय सामर्थ्यवाले हैं, तो भी अपने सामर्थ्य को प्रकट नहीं होने देते। जैसे समुद्र में कितना भी जल आ जाए, तो भी अपनी सीमा रूपी किनारों को नहीं तोड़ता। स्वामी ब्रह्मानंदजी कहते हैं कि भगवान ने अपने श्रीमुख से कहा है कि ऐसे भक्त मुझे प्रिय हैं।'

गुणातीत संत का सामर्थ्य भगवान जैसा है, तथापि यह भी सत्य है कि संत का यह सामर्थ्य, ऐश्वर्य, प्रताप, महिमा जो कुछ भी है, वह पुरुषोत्तम नारायण से मिली हुई है। श्रीहरि कहते हैं, 'नारायण के कारण ही ब्रह्मा, शिव, नारद तथा सनकादि को भगवान कहा जाता है। नारायण को लेकर

ही उद्धव को भगवान कहते हैं। यह मुक्तानन्द स्वामी जैसे सन्त को भी नारायण को लेते हुए भगवान के समान कह सकते हैं, परन्तु बिना नारायण के सम्बंध के तो अक्षर को भी भगवान नहीं कहा जा सकता, तो दूसरों की तो बात ही क्या कहनी?' (वच. लो. 13) (सिद्धांत यह है कि सभी में उस परमात्मा की शक्ति है, उस शक्ति से वे शक्तिमान हैं। यह शक्ति उनकी अपनी नहीं परमात्मा की ही है।)

गुणातीत संत कभी भी स्वयं भगवान नहीं बन सकते। परंतु उनमें भगवान सम्यक् रीति से निवास करते हैं। इसलिए गुणातीत संत के दर्शन भगवान के दर्शन हैं। सिद्धांत रूप से, 'ब्रह्म से परब्रह्म पुरुषोत्तम नारायण सर्वथा भिन्न हैं और उस ब्रह्म के भी कारण, आधार तथा प्रेरक हैं।' (वच. ग. म. 3)

इस गुरुपरंपरा में किसी ने भी भगवान होने या हो जाने का स्वप्न में भी विचार नहीं किया। वरताल की सभा में जब गुणातीतानंद स्वामी का अपमान किया गया तो किसी ने कहा, 'गुणातीतानंद स्वामी भगवान बनना चाहते हैं।' स्वामी ने तुरंत खड़े होकर निडरता से इस कथन का खंडन किया और कहा, 'कोई भी भगवान नहीं हो सकता। केवल श्रीजीमहाराज भगवान हैं। यदि कोई मुझे भगवान कहता है तो वह गधा है।' शास्त्रीजी महाराज प्रायः कहा करते थे, 'हम तो अक्षर पुरुषोत्तम के बैल हैं।' वे प्रायः समझाया करते थे, 'भगवान तो श्रीजीमहाराज हैं। जो कोई भी मुझे भगवान मानकर उपासना करेगा, नरक में जाएगा।'

शास्त्रीजी महाराज की ही तरह योगीजी महाराज और प्रमुखस्वामी महाराज सदा दासभाव, सेवकभाव से परब्रह्म पुरुषोत्तम नारायण के प्रति पराभक्ति कर रहे हैं। इसकी प्रतीति उनके निरहंकारी जीवन से तुरंत हो जाती है।

भगवान अक्षरब्रह्म द्वारा प्रकट रहते हैं। अगले पाठ में हम मूल अक्षर के स्वरूप, उनकी महिमा और मोक्ष मार्ग में अक्षरब्रह्म की हमें आवश्यकता क्यों हैं और वे हमारी कैसे सहायता करते हैं, इस विषय पर विचार करेंगे।

❖ ❖ ❖

6 अक्षरब्रह्म

सभी वैदिक दर्शनों और भाष्यकारों ने यह स्वीकार किया है कि परब्रह्म सर्वोच्च एवं सर्वोपरि तत्त्व है। परन्तु अक्षरब्रह्म क्या है, इस विषय में वेदांत दर्शनों में स्पष्ट रूप से चर्चा नहीं मिलती। शास्त्रों में ब्रह्म की महिमा, स्वरूप और लक्षणों के विषय में बहुत कुछ प्रतिपादित किया गया है। प्राय: शास्त्रों में ब्रह्म को ही परब्रह्म के रूप में निरूपित किया गया है। यहाँ तक कि विद्वान आचार्यों ने भी – जिन्होंने शास्त्रों पर भाष्य लिखे हैं –ब्रह्म को परब्रह्म का पर्यायवाची बताया है। तथापि कुछ श्रुतियों नो वर्णन किया है कि ब्रह्म भिन्न है। श्रीहरि ने जितना स्पष्टरूप से ब्रह्म तत्त्व को परिभाषित किया है, किसी ने भी नहीं किया। स्वामिनारायण वेदांत में जीव, ईश्वर और माया का आधार, उनका कारण (उनमें व्यापक) और इन तीनों से परे परंतु परब्रह्म से नीचे ऐसा चौथा तत्त्व अक्षरब्रह्म है। 'अक्षर' तथा 'ब्रह्म' यह इस तत्त्व का प्रचलित नाम है।

स्वामिनारायणीय उपासना में अक्षरब्रह्म का विशिष्ट स्थान है। मुक्ति में अंतिम ध्येय अक्षरब्रह्म के भाव को प्राप्तकर परब्रह्म परमात्मा श्री सहजानंद स्वामी की सेवा करना ही है। संप्रदाय के समस्त आश्रितों को सहजानंद स्वामी के युगल चरणों की ही उपासना करनी होती है। अक्षरब्रह्म के बिना यह उपासना सिद्ध नहीं होती। कारण यह है कि अक्षरब्रह्म के साथ एकता होने पर ही परब्रह्म की तत्त्व सहित जानकारी होती है, माया का भाव मिटता है, ब्रह्मरूप स्थिति होती है। और आत्यंतिक कल्याण होता है। पुरुषोत्तम के साक्षात्कार के लिए इस अक्षर से एकता होना अनिवार्य है। पुरुषोत्तम को प्राप्त करने के लिए अक्षर माध्यम है, इसलिए अक्षर और पुरुषोत्तम के संबंध को स्पष्ट रूप से समझना नितांत आवश्यक है।

अक्षररूप होकर पुरुषोत्तम की स्वामी-सेवक भाव से उपासना

श्रीहरि ने उत्तम निर्विकल्प निश्चय अर्थात् निष्ठा सिद्ध करने के लिए आदेश दिया है। केवल निर्विकल्प निश्चय के द्वारा ही पुरुषोत्तम नारायण के सर्वोत्कृष्ट स्वरूप की प्रतीति होती है। इस संप्रदाय के आश्रित सत्संगी प्रतिदिन सायंकालीन प्रार्थना में 'उत्तम निर्विकल्प' निश्चय की याचना करते हैं :

'निर्विकल्प उत्तम अति निश्चय तव घनश्याम.... ।'

– सद्‌गुरु प्रेमानंद स्वामी

'हे घनश्याम, कृपया अपना सर्वोत्तम निर्विकल्प निश्चय हमें प्रदान करो।'

श्रीहरि ने उत्तम निर्विकल्प निश्चय की बात वचनामृत में इस प्रकार कही है, **'जिस अक्षर में अष्टावरणयुक्त कोटि-कोटि ब्रह्मांड अणु की तरह प्रतीत होते हैं, वैसे पुरुषोत्तमनारायण के धामरूपी अक्षररूप में रहते हुए जो भक्त स्वयं पुरुषोत्तम की उपासना करता है, उसे उत्तम निर्विकल्प निश्चयवाला कहते हैं।'** (वच. लो. 12)

श्रीहरि के वचनों के अनुसार अक्षररूप होकर पुरुषोत्तम की उपासना करना ही उत्तम निर्विकल्प निश्चय है।

इस ब्रह्म से परब्रह्म पुरुषोत्तम नारायण सर्वथा भिन्न हैं और उस ब्रह्म के भी कारण, आधार तथा प्रेरक हैं। ऐसा समझकर उस ब्रह्म के साथ अपनी जीवात्मा का तादात्म्य स्थापित करके परब्रह्म की स्वामी-सेवक भाव से उपासना करें। इस प्रकार का विवेक ही ब्रह्मज्ञान है, तथा वही परमपद को प्राप्त करने का निर्विघ्न मार्ग है।' (वच. ग. म. 3)

श्रीहरि ने शिक्षापत्री में यह आज्ञा की है :

'निजात्मानं ब्रह्मरूपं देहत्रय-विलक्षणम् ।
विभाव्य तेन कर्तव्या भक्तिः कृष्णस्य सर्वदा ॥'

'अपनी आत्मा को ब्रह्मरूप मानना चाहिए जो कि तीनों देहों स्थूल-सूक्ष्म तथा कारण से विलक्षण यानी भिन्न है। और ब्रह्मरूप होकर भगवान की भक्ति सदैव करनी चाहिए।' (शिक्षापत्री – 116)

'सत्संगिजीवन' में भी कहा है, 'मुमुक्षु को चाहिए कि सांख्य ज्ञान के

द्वारा स्थूल, सूक्ष्म तथा कारण इन तीन देहों को अपनी आत्मा से पृथक् जाने। विराट, सूत्रात्मा तथा अव्याकृत इन तीन देहों से ईश्वर पृथक् है यह जाने। उसके पश्चात् अक्षरब्रह्म (मूर्तिमान) के साथ अपनी आत्मा का तादात्म्य संबंध बनाकर एकरूपता की भावना करे। इसके बाद ब्रह्मभूत अर्थात् ब्रह्मरूप हो या ऐसा मुमुक्षु भक्तजन वासुदेव - श्रीजीमहाराज की पूजा उपासना करे ।'[37]

श्रीहरि इस अक्षर को जान लेने और उसके साथ एकता स्थापित करने के सिद्धांत पर बल देते हुए, 'वेदरस' में कहते हैं, '**अपने जीव को अक्षरब्रह्म से एक मानकर जो पुरुषोत्तम की उपासना करता है वह धन्य है**' और वह जो अपने जीव और ब्रह्म में भेद मानता है, अपने जीव और अक्षर में तादात्म्य स्थापित नहीं कर पाता-एकता नहीं कर पाता, परन्तु जीव और अक्षर का स्वामी-सेवकभाव से विचार करता है उसे धिक्कार है। (वेदरस : पृ. 220)

'**अपनी आत्मा और अक्षर को एक जानकर जो पुरुषोत्तम परमात्मा हैं, उनकी उपासना करता है** वह पुरुष धन्य है और जो पुरुषोत्तम के साथ स्वामी-सेवक भाव से नही बरतता और एकत्वभाव से बरतता है, उसे भी धिक्कार है।' (वेदरस : पृ. 220)

अतः यह स्पष्ट रूप से समझ लेना चाहिए कि अक्षर और जीव को एक मानकर पुरुषोत्तम की स्वामी-सेवक भाव से उपासना करनी चाहिए।

श्रीहरि के हृदयगत भावों को यथार्थरूप से समझनेवाले अक्षरब्रह्म गुणातीतानंद स्वामी ने एकबार ग. प्र. 23, ग. म. 30, 45 तथा अम. 2, 3 - इन पाँच वचनामृतों का पठन दो-तीन बार करवाया और कहा, 'इन वचनामृतों को सुनते ही ऐसा समझ में आया कि **कोटि कल्प तक इन वचनामृतों में कहा है, उसी प्रकार किए बिना (अक्षररूप होकर पुरुषोत्तम की भक्ति किए बिना) छुटकारा नहीं है,** चाहे आचार्य हो या भगवान का

---

37. एतेन सांख्यज्ञानेन कारणादिवपुस्त्रयात् ।
स्वात्मा ज्ञेयः पृथक् चेशोऽव्याकृतादिवपुस्त्रयात् ॥
तादात्म्येन ततश्चैक्यं ब्रह्मणा स्वस्य भावयेत् ।
ब्रह्मभूतस्ततो भक्त्या वासुदेवं भजेत्पुमान् ॥
- सत्संगिजीवन : 4-72-1, 2.

पुत्र हो अथवा ईश्वर हो व छोटे-बड़े भगवान के अवतार हों तथापि ऐसे किए बिना छुटकारा नहीं है। **क्योंकि यही महाराज का भी मत है।'**

'चाहे आचार्य हो या भगवान का पुत्र हो अथवा ईश्वर हो व छोटे-बड़े भगवान के अवतार हों तथापि ऐसे किए बिना छुटकारा नहीं है। क्योंकि यही महाराज का भी मत है।' (स्वा.वा. 3/13)

इस प्रकार से अक्षररूप होकर पुरुषोत्तम की स्वामी-सेवक भाव से उपासना करना अर्थात् ब्रह्मरूप होकर परब्रह्म की स्वामी-सेवक भाव से उपासना करना यह श्रीजी द्वारा प्रतिपादित सनातन सिद्धांत है। इसलिए उनके आश्रित होने के नाते हमारे लिए अनिवार्य है कि हम अक्षररूप, ब्रह्मरूप बनें। श्रीहरि ने अक्षररूप होने की आवश्यकता को अन्य वचनामृतों में भिन्न प्रकार से समझाया है, आइए, उसका अवलोकन करें :

ब्रह्मरूप होने की आवश्यकता

(1) पुरुषोत्तम की भक्ति का अधिकारी बनने के लिए

भगवान की भक्ति तो सभी करते हैं, परंतु भगवान की भक्ति के योग्य अधिकारी कौन है? इस प्रश्न के उत्तर में श्रीहरि ने बताया है, **'जो ब्रह्मरूप हुआ है उसे ही पुरुषोत्तम की भक्ति करने का अधिकार है।'** (वच. लो. 7)

गीता में श्रीकृष्ण भगवान ने इसी सिद्धांत को प्रतिपादित किया है :

ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न काङ्क्षति ।
समः सर्वेषु भूतेषु मद्भक्तिं लभते पराम् ॥

'जो ब्रह्मरूप हुआ है, जिसका मन सदा प्रसन्न रहता है, जो किसी प्रकार का शोक नहीं करता है, जिसको किसी पदार्थ की इच्छा नहीं है, सर्वभूत में जिसे समभाव है, वही पुरुष मेरी परा भक्ति पाता है।'

(गीता : 18-54)

(2) निर्विघ्न भक्ति हेतु

वचनामृत में श्रीहरि कहते हैं, 'ऐसी स्थिति में शिवजी नहीं रह पाए

तो मोहिनी स्वरूप को देखकर मोहित हो गए थे और ब्रह्माजी ऐसी स्थिति में नहीं रह पाए, तो वे सरस्वती पर मुग्ध हुए थे, नारदजी भी इसी कारण विवाह करने के लिए लालायित हो उठे थे तथा इन्द्र एवं चन्द्रादि को भी ऐसी स्थिति नहीं रहने के कारण कलंकित होना पड़ा।' (वच. ग. प्र. 23)

यदि भगवान की भक्ति निर्विघ्न करनी हो तो अक्षरब्रह्म से तादात्म्य होना अनिवार्य है। अन्यथा किसी का भी भक्ति-पथ से फिसल जाने का निरंतर भय रहता है। जिसकी ऐसी स्थिति नहीं है, वह देह, गुण या अवस्था के भावों के साथ एकाकार होकर पंचविषय में आसक्त हो जाता है और भगवान के लिए भी उसकी बुद्धि में प्राकृतभाव भर जाता हैं।

मुमुक्षु के लिए कंचन और कामिनी ये दो बड़ी बाधाएँ हैं। इन दोनों से कौन मुक्त रह सकता है? इसे समझाते हुए श्रीहरि कहते हैं, 'सोना और स्त्री, दोनों बन्धनकारी हैं। इन दोनों में बन्धन तो उसीको नहीं होता, **जो प्रकृति-पुरुष से पर, शुद्ध चैतन्य ब्रह्म है, उसी एकमात्र ब्रह्म को सत्य समझता है, तथा उस ब्रह्म को ही अपना स्वरूप मान लेता है तथा ब्रह्मरूप होकर परब्रह्म श्रीकृष्ण भगवान का करता है ...ऐसे भक्त को स्वर्ण तथा स्त्री बन्धनकारी नहीं होंगे।**' (वच. ग. म. 30)

गुणातीतानंद स्वामी ने भी कहा है, 'ब्रह्माण्ड में ऐसा कोई पुरुष नहीं, जिसे स्त्री नहीं चाहिए, तथा न ही ऐसी कोई स्त्री है, जिसे पुरुष नहीं चाहिए। जीव को इस प्रकार के विषयों से दूर हटाने के लिए महाराज ने एक श्लोक लिखा है : '**निजात्मानं ब्रह्मरूपं।** जिस प्रकार गुजरात की भूमि को पाताल तक खोदने पर पत्थर नहीं मिलता, उसी प्रकार जीव के ब्रह्मरूप हो जाने पर कोई दोष नहीं मिलता।' (स्वा.वा. 1/141) '**निजात्मानं ब्रह्मरूपं**' यह आज्ञा पाली जाए, तो कारण देह का नाश होता है। (स्वा.वा. 5/72)

भक्ति मार्ग में किसी प्रकार का कोई विघ्न न आए, इसके लिए देह भाव मिटाकर ब्रह्मरूप होना अति आवश्यक है।

(3) आत्यंतिक मुक्ति हेतु

'प्रजापति आदि जगत के स्रष्टा से लेकर हर किसी को बार-बार

सृष्टि के साथ जन्म लेना पड़ता है तथा अन्त में पुनः माया में लीन हो जाते हैं। परन्तु, श्रीपुरुषोत्तम भगवान के अक्षरधाम को तो वे प्राप्त होते ही नहीं! क्योंकि उनकी समझ में ही दोष है।' (वच. अश्लाली) ऐसा कहकर श्रीहरि उनकी चार भूलों में से दूसरी भूल के विषय में कहते है, 'दूसरा **दोष यह है कि वे ऐसा नहीं मानते हैं कि अक्षररूप होकर श्रीपुरुषोत्तमनारायण की सेवा करना ही मुक्ति है।'** (वच. अश्लाली)

यदि प्रजापति, ब्रह्मादि सृष्टि के स्रष्टाओं को आत्यंतिक मुक्ति के लिए ब्रह्मरूप होने की आवश्यकता है, तो औरों के लिए क्यों नहीं ? इसलिए श्रीहरि कहते हैं, **'वस्तुतः जो भक्त ब्रह्मरूप होकर परब्रह्म की भक्ति नहीं करता, उसके सम्बंध में यही कहा जाएगा कि उसका भी आत्यन्तिक कल्याण नहीं हुआ।'** (वच. लो. 7)

मोक्ष मार्ग में अक्षरब्रह्म की आवश्यकता

1. ब्रह्मरूप होने के लिए

'तत्र ब्रह्मात्मना कृष्णसेवा मुक्तिश्च गम्यताम्॥'

(शिक्षापत्री - 121)

श्रीहरि मुक्ति अर्थात् मोक्ष की व्याख्या समझाते हुए कहते हैं, 'अक्षरधाम में ब्रह्मभाव धारण कर परब्रह्म की सेवा करना मुक्ति या मोक्ष कहलाता है।'

इस रीति से ब्रह्मरूप होने की आवश्यकता को समझ लेने के पश्चात् यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि ब्रह्मरूप कैसे हुआ जाता है? श्रीहरि के मतानुसार जीवन का अनादि अज्ञान, वासना और देहभाव किसी साधन से नहीं मिटते, परंतु ब्रह्म के संग और संबंध से मिट जाते हैं। माया का प्रभाव ब्रह्म के संग से दूर हो जाता है, क्योंकि ब्रह्म के स्वरूप में माया का कोई अंश नहीं है या कोई हीन तत्त्व नहीं है।

श्रीमद् भागवत में कहा है :

धाम्ना स्वेन सदा निरस्तकुहकं सत्यं परं धीमहि ॥

अर्थात् 'धाम, जो अपना स्वरूप है, उसके द्वारा माया का सर्गरूप

कपट जिसने निकाल दिया है, ऐसा परम सत्य भगवान का स्वरूप है।' (भा. 1-1-1)। इस रीति से यह धाम भगवान का स्वरूप है और धाम द्वारा भगवान जीवों के माया के दोषों को दूर करते हैं।

श्रीहरि कहते हैं, 'इसी प्रकार **निरंतर मनन करते हुए यदि वह ब्रह्म का संग करता है, तो ब्रह्म का गुण उस जीव में आ जाता है।'**

(वच. ग. म. 31)

श्रुति वाक्य में कहा गया है कि, '**ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति**' अर्थात् जो ब्रह्म को जान लेता है वह ब्रह्मरूप हो जाता है। (मुंडकोपनिषद् 3-2-9)

माया का आवरण-प्रभाव हटाने और ब्रह्मरूप होने के लिए अक्षरब्रह्म को जानना और संग करना नितांत अनिवार्य है।

गुणातीतानंद स्वामी कहते हैं, '**ब्रह्मरूप तो इस प्रकार से हो सकते हैं, जो ऐसे सन्त को ब्रह्मरूप मानकर मन, वचन और कर्म द्वारा उनका संग करें वह ब्रह्मरूप होता है।'** (स्वा.वा. 3/12)

2. परब्रह्म को तत्त्व सहित जानने के लिए

नराकृति रूप में परब्रह्म सदा दिव्य होते हैं। किन्तु मूढ़ जीव प्रत्यक्ष भगवान को मायिक दृष्टि से देखता व समझता है। क्योंकि हमारी 'दस इन्द्रियाँ तो रजोगुणात्मक हैं तथा चार अन्त:करण सत्त्वगुणमूलक हैं। अत: ये समस्त इन्द्रियाँ तथा अन्त:करण मायिक हैं और भगवान माया से परे हैं, तब मायिक अन्त:करण द्वारा उन भगवान का निश्चय किस प्रकार हो सकता है?' (वच. ग. प्र. 51)

किन्तु, 'जब **भगवान के एकान्तिक सन्त के वचन में विश्वास करके** कोई निष्कपटभाव से भगवान के चरणकमलों को भजता है, तब उसकी मायिक दृष्टि मिट जाती है। इसके बाद भगवान की उसी मूर्ति को परमचैतन्य, सत्, चित् तथा आनन्दमय मानने लगता है।' (वच. पं. 7)

'उस समय जो जीव **सन्त की संगत करके** इन पुरुषोत्तम भगवान की ऐसी महिमा को समझ लेता है, तभी उसकी इन्द्रियाँ और अन्त:करण, सब पुरुषोत्तममय हो जाती हैं। तब, उनके द्वारा उन भगवान का निश्चय हो जाता है।' (वच. ग. प्र. 51)

श्रीहरि अपने पुरुषोत्तम स्वरूप की अद्‌भुत बातें करते हुए समझाते हैं, '**भगवत्स्वरूप सम्बंधी ऐसी वार्ता तो** शास्त्रों से भी अपने-आप समझ में नहीं आती। सद्‌ग्रन्थों में ऐसी वार्ता तो होती है, **परन्तु जब सत्पुरुष प्रकट होते हैं तभी उनके मुख द्वारा यह बात समझ में आती है।** अपनी बुद्धि के आधार पर तो सद्‌ग्रन्थों में से भी यह बात समझ में नहीं आती।' (वच. ग. म. 13)

अतः यह तो स्पष्ट हो ही गया कि सत्पुरुष के माध्यम से ही श्रीहरि का पुरुषोत्तम स्वरूप समझ में आता है। **सत्पुरुष अर्थात् गुणातीत संत।** गुणातीत अर्थात् अक्षरब्रह्म का स्वरूप, उनको समझे बिना पुरुषोत्तम नारायण का तत्त्व सहित निश्चय कभी नहीं होता।

मनुष्य देहधारी परब्रह्म को सम्यक् रीति से दिव्यरूप में देखना उच्च ज्ञान की स्थिति है। वह ज्ञान कैसा है? वह तो प्रकृतिपुरुष से परे है।

(वच. ग. प्र. 24)

प्रकृतिपुरुष से परे अक्षर है। इसलिए अक्षर, पुरुषोत्तम के ज्ञान का मूर्तिमान स्वरूप है अर्थात् यह अक्षर ही पुरुषोत्तम को समझने का माध्यम है।

श्रीहरि प्रकारान्तर से महत्ता बताते हुए कहते हैं, 'जैसे पृथ्वी से जल महान है, और वह पृथ्वी का कारण भी है और पृथ्वी से सूक्ष्म भी है। तथा जल से बड़ा तेज है और तेज से बड़ा वायु है तथा वायु से बड़ा आकाश है। वैसे ही अहंकार, महत्तत्त्व, प्रधानपुरुष, प्रकृतिपुरुष तथा अक्षर, ये सभी एक-दूसरे से बड़े हैं, तथा एक-दूसरे से सूक्ष्म और एक दूसरों के कारण भी हैं। **...इन सबका कारण अक्षरब्रह्म है, तथा अक्षर (ब्रह्म) तो पुरुषोत्तम भगवान का धाम है।**' (वच. ग. प्र. 63)

उत्तरोत्तर एक-एक तत्त्व की महिमा समझने के पश्चात् अक्षर की महिमा समझ में आती है, और अक्षर की महिमा समझने के पश्चात् अक्षर से परे जो पुरुषोत्तम नारायण हैं, उनकी महिमा समझ में आती है, यह स्वाभाविक ही है। यहाँ पुरुषोत्तम नारायण की तत्त्व सहित समझ के लिए पहले अक्षरब्रह्म को समझ लेना आवश्यक है।

श्रीहरि कहते हैं, 'पुरुषोत्तम भगवान उन सब में कारणभाव से अन्तर्यामी रूप द्वारा प्रवेश करके रहे हैं, किन्तु **जिस प्रकार वे अक्षर में हैं,**

उस प्रकार प्रकृतिपुरुष में नहीं हैं।' (वच. ग. प्र. 41)

इसका अर्थ है यह कि अक्षरब्रह्म, पुरुषोत्तम के निकटस्थ है। इसलिए कोई भी मुक्त, पुरुषोत्तम की महिमा उतनी नहीं जान सकता जितनी अक्षर जान सके। अतः अन्य की तो बातें ही क्या की जाएँ ? इसलिए पुरुषोत्तम नारायण की यथार्थ महिमा समझने के लिए अक्षरब्रह्म से संबंध की अति आवश्यकता है। इसलिए श्रीहरि कहते हैं, '**अक्षरब्रह्म सूर्य के समान है। जैसे सूर्य जब आकाश के मध्य में आता है, तब सूर्य के योग से दसों दिशाओं की पहचान हो जाती है। वैसे ही अक्षरधाम है।'** (वच. ग. म. 42) अर्थात् अक्षर के योग से पुरुषोत्तम को जाना जा सकता है। यह आधारभूत समझ है, अर्थात चाभीरूप समझ है।

इस तरह तत्त्व सहित पुरुषोत्तमनारायण का निश्चय करने और उनकी यथार्थ महिमा समझने के लिए अक्षरब्रह्म को पूर्ण महिमा सहित जानना, और मन, कर्म तथा वचन से संग करना अनिवार्य है। श्रुति में कहा है, '**ब्रह्मविदाप्नोति परम्**' अर्थात् जो ब्रह्म को जानता है, वह परब्रह्म को पाता है। (तैत्तिरीयोपनिषद् : 2-1)

❀

अब परब्रह्म को पाने के लिए द्वार-रूप जो अक्षरब्रह्म है, उसकी महिमा और उसके स्वरूप को जानें।

अक्षरब्रह्म की अनंत महिमा

वेद उपनिषद्, भगवद्गीता आदि शास्त्रों में तथा श्रीहरि ने वेदरस और वचनामृत में अक्षरब्रह्म की अपार महिमा कही है।

'प्रकृति, महत्तत्व, अहंकार और पंचतत्त्वमात्रा - इन आठ प्रकृतियों सहित (इन्हें 'आठ आवरण' भी कहते हैं) दस इन्द्रियाँ, मन और पंचभूत, इन सोलह विकारों से मिलकर बना हुआ यह ब्रह्माण्ड भीतर से पचास करोड़ योजन विस्तारवाला है तथा इसके बाहर चारों ओर उत्तरोत्तर दस-दस गुने सात आवरण हैं। उन सबके सहित यह ब्रह्मांड जिसमें परमाणु के समान पड़ा हुआ दिखाई देता है और जिसमें ऐसे करोड़ों ब्रह्माण्ड हैं, वह इन प्रधानादि समस्त कारणों का कारण अक्षरब्रह्म कहलाता है और यही साक्षात्

पुरुषाकृति परमात्मा का धाम है।'[38](भा. 3/11/40)

'अक्षर की काल शक्ति से, अक्षर के जल में छिद्रों में पड़े हुए बबूलों की तरह अनंत कोटि महाविष्णु बनते और फूटते हैं... परंतु अक्षर तो उत्पत्ति, स्थिति एवं प्रलय की तीनों अवस्थाओं से अप्रभावित रहता है ।' (वेदरस पृ. 148)

'**अक्षर सबका दृष्टा, सबका साक्षी है।** ब्रह्म सबको जाननेवाला है। वह सबका ईश्वर (शासक), सबका नियन्ता, सर्वकर्ता, और कूटस्थ है। पुरुषप्रकृति आदि सब में व्याप्त है। यह सबका अंतर्यामी है, सबका प्रेरक है। एकरस स्वरूप है और अखंड ज्ञान से युक्त है.... इसकी शक्ति से पुरुषप्रकृति में से प्रकृतिमय सारा प्रपंच उपजता है और उसकी शक्ति से बना भी रहता है। ब्रह्म सर्वशक्तिमान एवं सूक्ष्मतर है।'

(वेदरस पर आधारित पृ. 157 से 159 और 165, पृ. 213)

अक्षरब्रह्म का स्वरूप

श्रीहरि ने अक्षरब्रह्म के स्वरूप की बात वेदरस और वचनामृत में की है, 'जो ब्रह्म, **निर्विकार** तथा **निरंश** है। वह विकार को प्राप्त नहीं होता और उसके अंश भी नहीं बनते उस ब्रह्म को 'सर्वरूप' कहा गया है। वह इस प्रकार है कि 'यह ब्रह्म प्रकृति-पुरुष आदि सबका कारण तथा आधार है और अन्तर्यामी शक्ति द्वारा सबमें व्यापक है। जो कारण आधार और व्यापक हो, वह कार्य से पृथक् हो ही नहीं सकता। ऐसी समझ से शास्त्रों में ब्रह्म को 'सर्वरूप' बताया गया है, किन्तु ऐसा नहीं मानना चाहिए कि वह ब्रह्म ही विकार को प्राप्त कर चराचर जीवरूप हो गया। ' (वच. ग. म. 3)

नित्य, सनातन एवं अखंड अक्षरब्रह्म का अन्वय स्वरूप माया और माया के कार्यरूप अनंत कोटि ब्रह्मांडों में आकाश की तरह व्यापक है। किन्तु व्यतिरेक स्वरूप से यह सबसे परे सच्चिदानंदरूप है। इस स्वरूप में

---

38. *दशोत्तरादिकैर्यत्र प्रविष्टः परमाणुवत् ।*
लक्ष्यतेऽन्तर्गताश्चान्ये कोटिशो ह्यण्डराशयः ॥
तदाहुरक्षरं ब्रह्म सर्वकारणकारणम् ।
विष्णोर्धाम परं साक्षात् पुरुषस्य महात्मनः ॥

पुरुष, प्रकृति आदि सबकी कोई उपाधि नहीं रहती, एक पुरुषोत्तम भगवान ही रहते हैं। (वच. ग. प्र. 7, सा. 5, ग. म. 64 के आधार पर)

अक्षर के दो स्वरूप

अक्षर के दो स्वरूपों का वर्णन करते हुए श्रीहरि कहते हैं, 'उस अक्षर के दो स्वरूप हैं। इनमें से एक तो निराकार एकरस चैतन्य है। उसे चिदाकाश और ब्रह्मधाम कहते हैं तथा वह अक्षर दूसरे रूप से पुरुषोत्तमनारायण की सेवा में रहता है।' (वच. ग. प्र. 21)

बृहदारण्यक उपनिषद् में अक्षरब्रह्म के दो स्वरूप कहे हैं : **द्वे वाव ब्रह्मणो रूपे मूर्तं चैवामूर्तं च।** (बृहदारण्यक : 2-3-1)

इस रीति से अक्षरब्रह्म के दो रूप हैं (१) निराकार। (२) साकार।

❀

अब हम अक्षर के विविध कार्यों पर विचार करेंगे।

(1) अक्षरब्रह्म - सच्चिदानंद चिदाकाश तेजरूप

अक्षरब्रह्म का यह निराकार स्वरूप है। चिदाकाश रूप से यह सर्वत्र व्यापक है। सर्व पदार्थों में व्याप्त है। मिट्टी के कण-कण में व्याप्त है। रजकणों के करोड़ों टुकड़े करें तो उनमें भी व्याप्त है। ऐसा **जो चिदाकाश है, वह अविनाशी है, निर्विकारी है और अनादि है। उसकी उत्पत्ति-विनाश नहीं होता।** (वच. ग. प्र. 46 के आधार पर)

चिदाकाश धामरूप अक्षर का सच्चिदानंद ब्रह्मसंज्ञक तेज है। **इन दोनों में कार्यकारण भेद नहीं है।** ग. म. 42 के अनुसार चिदाकाश में करोड़ों ब्रह्माण्ड हैं।

अक्षरब्रह्म, सच्चिदानंद चिदाकाश तेजरूप अपनी अंतर्यामी शक्ति से पुरुष और प्रकृति तथा प्रकृति के सर्व कार्यों में बाह्यांतर व्यापक है और उनका आधार है। **यह अक्षर का निर्गुण स्वरूप है।**

(2) अक्षरब्रह्म - धामरूप में

अक्षरब्रह्म का यह अति अपार, साकार और सगुण स्वरूप है।

कुबेरसिंह ने प्रश्न पूछा कि ब्रह्मपुर (अक्षरधाम) कैसा है। उनके प्रश्न का श्रीहरि ने उत्तर दिया :

'अक्षररूप जो ब्रह्म हैं, वे ही श्रीपुरुषोत्तमनारायण के निवास के लिए धामरूप हुए हैं। सर्व अक्षरब्रह्म[39] (अक्षरमुक्तों) की अपेक्षा **भगवान के धामरूप जो अक्षरब्रह्म हैं, वे अनादि हैं। ...**उसका स्वरूप इतना दिव्य है कि उसकी उपमा किसी अन्य धाम के साथ नहीं दी जा सकती।...जो अपार है। जैसे आकाश अपार है, और उसके चारों ओर देखने पर भी उसका किसी भी दिशा में अन्त नहीं दीखता, वैसे ही उन भगवान के धाम के नीचे अथवा ऊपर अथवा चारों तरफ कहीं भी अन्त नहीं है। क्योंकि, वह अपार है। उसकी थाह लगाने का प्रयास किया भी जाय, तो भी उसकी थाह नहीं मिल सकती। ऐसा महान है वह ब्रह्मपुर।... उस धाम में असंख्य पार्षद रहे हैं। वे दिव्य आकारसहित तेजोमय हैं तथा समस्त भूतप्राणीमात्र के अन्तर्यामी हैं। वे सब भगवान की सेवा में निरन्तर तत्पर रहे हैं।' (वच. अम. 6)

'इन सबका कारण अक्षरब्रह्म है, तथा अक्षर (ब्रह्म) तो पुरुषोत्तम भगवान का धाम है। उस अक्षर की संकुचन एवं विकास की अवस्था नहीं होती है और उसका सदैव एक ही रूप बना रहता है। वह अक्षर मूर्तिमान है, परन्तु बहुत बड़ा है। अत: अक्षर का रूप किसी को भी दिखाई नहीं देता। जैसा चौबीस तत्त्वों का कार्य ब्रह्मांड पुरुषावतार कहलाता है, और वे विराटपुरुष करचरणादि से युक्त हैं, परन्तु उनकी मूर्ति अतिशय विशाल है, अत: उन्हें देखने में नजर नहीं पहुँचती।... **अक्षरधाम भी उसी प्रकार मूर्तिमान है, परन्तु वह किसी को नहीं दिखाई देता। वे इतने बड़े हैं कि ऐसे-ऐसे असंख्य ब्रह्मांड उनके एक-एक रोम में उड़ते ही रहते हैं। ऐसे अक्षरधाम में पुरुषोत्तम भगवान स्वयं सदैव विराजमान रहते हैं।'** (वच. ग. प्र. 63)

इस रीति से श्रीहरि ने धामरूप अक्षरब्रह्म को साकार, मूर्तिमान ही बताया है। उसका रूप दिखाई नहीं देता, क्योंकि वह अति विशाल है। उसकी व्यापकता अपरिमित है। उसकी संकुचन एवं विकास की अवस्था नहीं होती। इसलिए उसके रूप का भास नहीं होता। मूल माया के

39. 'अक्षरब्रह्म संज्ञक मुक्त' कहने का अभिप्राय है।

अधिपति मूलपुरूष (मुक्त) तक कोई उसका पार नहीं पा सकते। उन सभी को ब्रह्म अनंत अपार दिखता है। इसलिए अनेक शास्त्रकारों ने अनेक स्थान पर उसे अरूप, अलिंग और निराकार कहा है। वास्तव में धामरूप अक्षरब्रह्म भगवान का निवास स्थान तथा असंख्य मुक्तों का धारक होने के कारण मूर्त-साकार है और असंख्य सूर्य-चन्द्रमाओं जैसा तेजोमय है।

(सेतुमाला तरंग : 63-45 से 49)

(3) अक्षरब्रह्म - साकार, मूर्तिमान, सदा दिव्यविग्रह

अक्षरधाम में अक्षरब्रह्म दिव्य विग्रह और मनुष्यरूप में सदा ही पुरुषोत्तम नारायण की सेवा करते हैं। मूर्तिमान अक्षरब्रह्म सर्वोत्कृष्ट भक्ति और परम सेवा के मूर्तिमान आदर्श हैं । वचनामृत ग. प्र. 21 में, श्रीहरि कहते हैं, 'वह अक्षर दूसरे रूप से पुरुषोत्तम नारायण की सेवा में रहता है।'

हरिवाक्यसुधासिंधु में कहा है :

'मूर्तं तत्रास्ति कृष्णस्य सेवायां दिव्यविग्रहम् ।'

अर्थ : अक्षरधाम में पुरुषोत्तम की सेवा में अक्षरब्रह्म **दिव्य विग्रह मूर्तिमान रूप में सदा रहता है।** (ह. वा. सु सिं. त. 21/22)

'हरिवाक्यसुधासिंधु' की सेतुमाला टीका में लिखा है :

(1) 'साकार अक्षरब्रह्म दिव्यविग्रह है, और श्रीहरि के रूप के **अनुरूप इसके दो हाथ और दो पैर तथा अति सुंदर पुरुषाकार मूर्ति है** और अपने से अत्यधिक निरतिशय शरीर की शोभावाले अपने इष्टदेव श्रीहरिकृष्ण पुरुषोत्तम नारायण की दासभाव से नित्य सेवा करते हैं।'[40]

(2) 'श्रीहरि के अपने दिव्य अक्षरधाम में, अक्षरब्रह्म के भाव को प्राप्त अनंत कोटि मुक्तों तथा **मूर्तिमान अक्षरब्रह्म द्वारा** श्रीहरि की इच्छानुसार सेवा हो रही है।'[41]

---

40. *मूर्तं त दिव्यविग्रहं रूपानुरूपकरचरणाद्यवयवविशिष्टत्त्वेन अतिसुन्दरपुरुषाकारमूर्ति सत् कृष्णस्य ततोऽप्यतिनिरतिशयशरीरशोभावतः स्वेष्टदेवस्य... सेवायाम् अस्ति दासवत् सदा वर्तते।* (सेतु. 21/22)

41. *हरिः स्वकीयाक्षरधामन्यक्षरभावापन्नमुक्तकोटिभिर्मूर्तेनाऽक्षरब्रह्मणा च छन्दाऽनुवृत्तितया कृतपरिचर्यः।* (सेतु. 159/5)

(3) 'वह अक्षर, पुरुषोत्तम नारायण के **मुख्य परिचारक** (मुख्य, आदर्श और अनादि के सर्वोत्कृष्ट सेवक) **दिव्य, अतिमनोहर हाथ, पैर, मुँह आदि अवयवों से युक्त होने के कारण पुरुषाकार साकार हैं।'**[42]

अक्षरधाम में जितने भी मुक्त हैं, उन सब में यह अक्षर पुरुषोत्तम नारायण के मुख्य सेवक हैं, यह स्पष्ट होता है।

(4) अक्षरब्रह्म - मनुष्य देहधारी

श्रीहरि ने बताया है कि 'भगवान जीव के कल्याण के लिए जब मूर्ति धारण करते हैं, तब वे अपने अक्षरधाम एवं चैतन्यमूर्ति पार्षदों तथा समस्त निजी ऐश्वर्यों के सहित ही पधारते हैं **...अतएव, भगवद्भक्तों को यह समझ लेना है कि भगवान का स्वरूप अक्षरधाम सहित पृथ्वी पर विराजमान रहता है और भगवान के भक्तों को दूसरे लोगों के सामने भी इसी प्रकार वार्ता करनी चाहिए।'** (वच. ग. प्र. 71)

परब्रह्म पुरुषोत्तम नारायण अति करुणा करके इस पृथ्वी पर मनुष्य शरीर धारण करके प्रकट हुए और सबके लिए नयनगोचर हुए। अपने साथ अपने धामरूप अक्षरब्रह्म गुणातीतानंद स्वामी को लाए। श्रीहरि ने इस पृथ्वी पर 49 वर्ष रहकर भक्तों को अपार आनंद दिया और असंख्य मुमुक्षुओं को मोक्ष देकर उनका परम कल्याण किया। अपने धाम में लौटने के पश्चात्, उन्होंने अपना प्राकट्य उत्तरोत्तर अक्षरब्रह्म स्वरूप संत द्वारा निरंतर बनाए रखा है और आत्यंतिक मोक्ष का मार्ग खुला रखा है।

अक्षरब्रह्म - एक और अद्वितीय

जैसा हमने पहले देखा, अक्षरब्रह्म चिदाकाश तेजरूप से, धामरूप से, धाम में नित्य निकटतम सेवकरूप में और इस पृथ्वी पर मनुष्यरूप में पुरुषोत्तम की सेवा करते हैं। **कार्यात्मक भेद से तत्त्व भेद नहीं समझ लेना चाहिए। क्योंकि अक्षरब्रह्म सदा एक और अद्वितीय है।**

---

42. *'तदक्षरं' कृष्णस्य सेवकत्वाद् मुख्यपरिचारकत्वादिहेतोः दिव्यैरतिमनोहरैः पाणिपादमुखादिभिः अवयवैः प्रतीकैः उपलाक्षितत्वात् साकृति पुरुषाकारमुच्यते'* (सेतु. 63/45)

असंख्य जीव और असंख्य ईश्वर हैं। समस्त जीवों-ईश्वरों की आत्यंतिक मुक्ति अक्षरब्रह्म और परब्रह्म पुरुषोत्तम नारायण के साक्षात् संग और भगवान की कृपा से होती है। तब उन्हें अक्षर मुक्त कहते हैं । अक्षरमुक्त भी असंख्य हैं। किन्तु परब्रह्म एक और अद्वितीय है, उसी तरह, अक्षरब्रह्म भी एक और अद्वितीय है। भगवान स्वामिनारायण ने इस तथ्य को वचनामृत और वेदरस में समझाया है। 'अक्षर के साधर्म्य को प्राप्त करनेवाले अनेक अक्षर पुरुष हैं। किन्तु अक्षर तो एक ही है।' (वेदरस : पृ. 213-214)

गुणातीतानंद स्वामी ने भी इस बात का अनुमोदन किया है, '**धामरूप अक्षर तो एक ही है, और दूसरे अक्षरमुक्त अनन्तकोटि हैं।**'

(स्वा. वा. 5/177)

रघुवीरजी महाराज कृत 'हरिवाक्यसुधासिंधु' की टीका सेतुमाला में भी यह सिद्धांत प्रतिपादित हुआ है, 'अपने धाम में श्रीहरि अपनी इच्छा के अनुसार **अनंत कोटि मुक्तों से, जिन्होंने मूर्तिमान अक्षरब्रह्म** से ब्रह्मभाव (साधर्म्यभाव) प्राप्त किया है तथा मूर्तिमान अक्षरब्रह्म द्वारा सेवा-परिचर्या करवा रहे हैं।' (सेतु. टी. 59/5)

यहाँ अक्षरमुक्तों को 'अनंत कोटि' कहा गया है जबकि मूर्तिमान अक्षरब्रह्म एक ही है । वचनामृत और वेदरस में अनेक स्थानों पर अक्षरब्रह्म के लिए एक वचन का प्रयोग किया गया है । '**अक्षर तो ऐसा है** और उस अक्षर का सुख ऐसा है' (वच. लो. 17)

'**अक्षरधाम परात्पर है।**' (बड़े से भी बड़ा है) (वेदरस पृ. 146)

इससे स्पष्ट है कि अक्षरब्रह्म एक और अद्वितीय है। इस एक और अद्वितीय अक्षर को श्रीहरि ने अनादि कहा है। अन्य अक्षरमुक्त उस स्थिति तक अनादि अक्षर के माध्यम से ही पहुँचे हैं।

'अक्षररूप जो ब्रह्म हैं, वे ही श्रीपुरुषोत्तमनारायण के निवास के लिए धामरूप हुए हैं। सर्व अक्षरब्रह्म (अक्षरमुक्तों) की अपेक्षा भगवान के धामरूप जो अक्षरब्रह्म हैं, वे अनादि हैं।' (वच. अम. 6)

अक्षर और पुरुषोत्तम का परस्पर सम्बंध

अक्षर और पुरुषोत्तम के बीच **शरीर-शरीर तथा सेवक और स्वामी-**

भाव का अपृथक् सिद्ध संबंध है।

श्रीजीमहाराज कहते हैं, 'वही अक्षरधाम का मध्यभाग है, जहाँ उन पुरुषोत्तम की मूर्ति है।' (वच. ग. म. 42) 'जिस स्वरूप में पुरुषप्रकृति आदि की कोई उपाधि नहीं होती और एकमात्र पुरुषोत्तम भगवान ही रहते हैं, वह अक्षर का व्यतिरेक स्वरूप जानना।' (वच. सा. 5)

अक्षरब्रह्म, परब्रह्म के प्रियतम, निकटतम, आदर्श, उत्तम सेवक हैं और भक्त के रूप में धाम में श्री पुरुषोत्तम के सदा साथ हैं और जिस-जिस ब्रह्माण्ड में भगवान पधारते हैं, वहाँ उनकी इच्छा से प्रकट होते हैं। (वच. ग. प्र. 71, ग. म. 42 के आधार पर)। संक्षेप में इस कारण से यद्यपि अक्षरब्रह्म, परब्रह्म पुरुषोत्तम से भिन्न तत्त्व है तो भी उसके साथ सदा से संलग्न है। अर्थात् परब्रह्म के साथ अक्षरब्रह्म- '**दासत्वयुक्त नित्य परमस्नेहैक्य सम्बंध**' से जुड़ा हुआ है । अक्षरब्रह्म-परब्रह्म से अकेले अलग रहें, यह कल्पना असंभव है।

ब्रह्म और परब्रह्म, अक्षर और पुरुषोत्तम, स्वामी और नारायण के एकत्व का वर्णन करते हुए सद्गुरु निष्कुलानंद स्वामी ने लिखा है :

'छो तो एक ने दीसो छो दोय, तेनो मर्म जाने जन कोय ।'

(भ. चिं. प्र. 5)

'वास्तव में तुम एक हो, किन्तु दो दिखते हो। कठिनाई से ही कोई इस मर्म को जान सकता है।'

'धन्य नरनारायण एक, ते तो जाणे विरला विवेक ।
धन्य अकळ कळा तमारी, बेउ बांधवानी बलिहारी ॥'

(भ. चि. प्र. 6)

'अर्थात् नर और नारायण आप धन्य हैं, आप एक हैं इसे तो कोई विरल ही अपने विवेक बुद्धि से जान सकता है। आप दोनों बहुत अनोखे हैं क्योंकि आपकी दिव्य लीला रहस्यात्मक है।'

इस प्रकार अक्षरब्रह्म और परब्रह्म का सम्बंध अपृथक् सिद्ध है। परब्रह्म के बिना अक्षरब्रह्म का विचार ही असंभव है। कारण यह है कि परब्रह्म के बिना अक्षरब्रह्म की कोई महिमा नहीं है। जैसे पतवार के बिना नाव, उसी तरह ब्रह्म के बिना परब्रह्म की भक्ति का अधिकार नहीं मिलता है।

अक्षर सर्व के स्वामी हैं, परंतु पुरुषोत्तम के दास हैं। परब्रह्म के अतिरिक्त, अन्य कोई सत्ता अक्षरब्रह्म पर शासन नहीं कर सकती।

'पुरुषोत्तम भगवान... आत्मा एवं अक्षर, सबके प्रेरक, स्वतन्त्र तथा नियन्ता होने के साथ-साथ समस्त ऐश्वर्यों से सम्पन्न हैं और सर्व से परे जो अक्षर है, उससे भी परे हैं।' (वच. ग. प्र. 64)

इस तरह परब्रह्म पुरुषोत्तम, ब्रह्म के आधार, कारण और प्रेरक हैं।

पुरुषोत्तम नारायण सर्वकर्ता, सर्वकारण, सर्वनियंता, अतिरूपवान, महातेजस्वी, अतिसमर्थ तथा 'कर्तुम्, अकर्तुम् और अन्यथाकर्तुम्' शक्ति के धारक हैं। 'जिस अक्षरधाम में वे स्वयं रहते हैं, उस अक्षर को भी लीन करके स्वत: स्वराट् रूप से अकेले ही विराजमान हो सकते हैं। यदि वे चाहें तो अक्षरधाम के बिना ही अनन्तकोटि मुक्तों को अपने ऐश्वर्य द्वारा धारण करने में समर्थ होते हैं।' (वच. लो. 13)

अत: यह स्पष्ट है कि पुरुषोत्तम स्वतंत्र हैं। अक्षर उनके आधार नहीं हैं। परंतु अक्षर के आधार पुरुषोत्तम हैं।

पुरुषोत्तम के पास अक्षरधाम को लीन कर सकने की विशिष्ट शक्ति है। किन्तु आत्यंतिक प्रलय के समय जीव और ईश्वर माया में लीन होते हैं। माया ब्रह्म में लीन होती है, परंतु ब्रह्म, परब्रह्म में लीन होता है, ऐसा उल्लेख कहीं नहीं हुआ है। परंतु 'भगवान के अक्षरधाम तथा उस धाम में स्थित भगवान की मूर्ति और उस धाम में रहनेवाले भगवान के भक्त, उनके सिवा ...सब नाशवंत हैं।' (वच. ग. म. 24) अर्थात् आत्यंतिक प्रलय के समय धाम, धामी और मुक्त ये तीन ही नष्ट नहीं होते।

❀

ब्रह्म को परब्रह्म लीन करते हैं, इसका क्या अर्थ है ?

वचनामृत में कहा है कि परब्रह्म, ब्रह्म को लीन करते हैं, इससे क्या समझें? ब्रह्म को लीन करते हैं इसका अर्थ है कि ब्रह्म की शक्तियों को दबा देते हैं, अर्थात् ब्रह्मभाव, परब्रह्म के विशेष भाव के ऐश्वर्य में समा जाता है फिर परब्रह्म स्वयं स्वराट् रूप से अकेले ही विराजमान रहते हैं। परंतु ब्रह्म के व्यतिरेक स्वरूप का लय नहीं होता है।

श्रीहरि वचनामृत में कहते हैं, 'जिस-जिस में उन पुरुषोत्तम भगवान का प्रवेश होता है, उन सभी को वे अपने प्रकाश द्वारा लीन उस रूप से स्वयमेव सर्वोत्कर्ष भाव के साथ विराजमान होकर रहते हैं। जिनमें वे स्वयं विराजमान रहते हैं, उनके प्रकाश को स्वत: ढाँककर अपना प्रकाश प्रकट करते हैं। जिस प्रकार लोहे में रहनेवाली अग्नि लोहे में विद्यमान शीतलता के गुण और काले वर्ण को दूर करके स्वयं अपने गुण को प्रकट कर देती है, जैसे सूर्योदय होता है, तब उसके प्रकाश में समस्त तारागणों एवं चन्द्रमादि का तेज विलीन हो जाता है, और एकमात्र सूर्य का ही प्रकाश रहता है। **वैसे ही जिनमें भगवान का प्रवेश होता है, उन सभी के तेज को तिरोहित करके वे अपने प्रकाश को ही अधिकरूप से प्रकाशमान किये रहते हैं।'** (वच. पं. 7)

यहाँ समझने की बात यह है कि लोहे का शीतल गुण और उसका काला वर्ण अग्नि के कारण दिखाई नहीं देता, किन्तु रहता तब भी है। इसी प्रकार से सूर्य के प्रकाश से तारा-चन्द्रादि का प्रकाश ढक तो अवश्य जाता है यानी हमें इन स्थूल नेत्रों से दिखाई नहीं देता परंतु रहता अवश्य है। इसी प्रकार ब्रह्म के भाव भी रहते हैं परंतु परब्रह्म के भाव या शक्ति के सामने फीके पड़ जाते हैं या तेजहीन हो जाते हैं । जब पुरुषोत्तम भगवान अपना कार्य कर वापस बाहर आ जाते हैं तब ब्रह्मभाव स्वत: ही प्रकट हो जाता है। वैसे ही अग्नि के निकल जाने से शीतलता और काला वर्ण पुन: दिखाई देने लगता है। तारा-चन्द्रादि का प्रकाश भी सूर्य के आगे निकल जाने से पुन: दिखाई देने लगता है।

समढ़ियाला गाँव के भक्त वीरा शेलड़िया के पुत्र लक्ष्मण की सारी वृत्तियाँ गुणातीतानंद स्वामी में लग गईं। उसे स्वामी के स्थान पर श्रीजीमहाराज दिखाई देने लगे। इस तरह उसने ब्रह्म को परब्रह्म के स्वरूप में लीन होते देखा और जाना। यह प्रसंग इतिहास-प्रसिद्ध है।

अक्षर और पुरुषोत्तम के बीच समान गुणधर्म

तात्त्विक दृष्टि से, 'इस ब्रह्म से परब्रह्म पुरुषोत्तम नारायण सर्वथा भिन्न हैं और उस ब्रह्म के भी कारण, आधार तथा प्रेरक हैं।' (वच. ग. म. 3) तो भी दोनों में कुछ समान गुण-धर्म हैं। आइए देखें।'

जैसे पुरुषोत्तम माया से परे हैं, वैसे ही अक्षर भी माया से परे हैं। जिस प्रकार पुरुषोत्तम मूर्तिमान है, वैसे ही अक्षर भी मूर्तिमान है। जिस तरह पुरुषोत्तम भगवान जिस-जिस पदार्थ को अंगीकार करते हैं वे ब्रह्मरूप हो जाते हैं, यहाँ तक कि माया भी निर्गुण हो जाती है; उसी प्रकार अक्षरब्रह्म में भी ये सब गुण हैं। अक्षर भी पुरुषोत्तम नारायण की तरह ही - अलिप्त, निर्लेप, एक और अद्वितीय हैं। पुरुषोत्तम की तरह ही अक्षर उत्पत्ति सर्ग (सृष्टि निर्माण) से सीधे सम्बंधित नहीं है।

जहाँ कहीं भी अनंत जीवों का कल्याण करने के लिए पुरुषोत्तम नारायण मनुष्य देह में प्रकट होते हैं, वहाँ-वहाँ उनके साथ ही अक्षरब्रह्म मनुष्य देह धारण करते हैं। 'जितनी सीमा में राजा का राज्य उतनी सीमा में रानी का राज्य' इस न्याय से जितना पुरुषोत्तम का प्रताप है, उतना ही अक्षरब्रह्म का प्रताप है। जिस तरह पुरुषोत्तम नारायण अनंत जीवों का कल्याण करते हैं, उसी तरह ही अक्षरब्रह्म अनंत जीवों का कल्याण कर सकते हैं। हाँ, अक्षरब्रह्म में जो भी सामर्थ्य है, वह पुरुषोत्तम के अधीन है ।

अक्षर रूप होकर पुरुषोत्तम की उपासना

श्रीहरि ने ब्रह्म-परब्रह्म की उपासना का सिद्धांत प्रतिपादित किया। इस सिद्धांत को मुमुक्षुओं को समझाने के लिए उन्हों ने जहाँ-जहाँ परोक्ष देवों की मूर्तियों की मंदिर में स्थापना की, वहाँ-वहाँ उनके भक्तों सहित ही स्थापना की है। नरनारायण, लक्ष्मीनारायण, राधाकृष्ण आदि स्वरूपों को प्रतिष्ठित करके उन्होंने शास्त्र में जो भक्त-भगवान उपासना का तात्त्विक सिद्धांत था, उसी को समझाया है।

शिक्षापत्री में श्रीहरि कहते हैं, 'श्रीकृष्ण भगवान जब राधिकाजी से युक्त हों तब 'राधाकृष्ण', लक्ष्मीजी से युक्त हों तो 'लक्ष्मीनारायण', अर्जुन से युक्त हों तो 'नरनारायण' नाम से जाने जाते हैं ।' (श्लोक : 109, 110)

क्या इसका यह अर्थ है कि उस समय लोग इतने नासमझ थे कि भगवान राधिकाजी से युक्त हों तब 'राधाकृष्ण कहलाते हैं।' ऐसी सामान्य बात भी समझ नहीं सकते थे? नहीं! इस विधान का रहस्य यह है कि जैसे अन्य अवतारों की भक्तरूप होकर उपासना होती है, उसी तरह अपने

इष्टदेव की भी अक्षररूप होकर ही उपासना करनी चाहिए, यह बात श्रीहरि शिक्षापत्री के श्लोकों द्वारा गर्भित रूप से समझाते हैं।

शिक्षापत्री के श्लोक 111 का भाष्य करते हुए सद्गुरु शतानंद मुनि लिखते हैं, 'जहाँ किसी मंदिर में श्रीकृष्ण भगवान की केवल एक मूर्ति की प्रतिष्ठा की हो, तब भी श्रीकृष्ण-राधिकाजी सेवक मंडल के साथ ही हैं, ऐसी भावना करनी चाहिए।'[43] इस सिद्धांत के अनुसार जहाँ श्रीहरिकृष्ण महाराज (सहजानंद स्वामी) की एक मूर्ति की प्रतिष्ठा की गई है, वहाँ भी हरिकृष्ण महाराज के साथ ही उनके श्रेष्ठ भक्त अक्षरब्रह्म गुणातीतानंद स्वामी विराजमान हैं, ऐसी भावना रखनी चाहिए।

इस श्लोक पर श्री भगवत्प्रसादजी महाराज टीका करते हुए लिखते हैं, 'राधा आदि तो नित्य मुक्त हैं। भगवान के साथ भक्त की उपासना करनी चाहिए, इसमें क्या संदेह? किसी प्रकार की शंका को अवकाश नहीं हैं।'[44] इस सिद्धांत के आधार पर परब्रह्म पुरुषोत्तम के साथ अक्षर की उपासना के लिए संदेह का कोई स्थान नहीं है।

इसका अर्थ स्पष्ट है कि शास्त्रीजी महाराज ने स्वामी और नारायण अर्थात् अक्षर-पुरुषोत्तम का कोई नया सिद्धांत नहीं गढ़ा था। उन्होंने तो श्रीहरि के सिद्धांत का सार तत्त्व संप्रदाय के सामने अभिव्यक्त किया, और इस तरह असंख्य जीवों के लिए परमकल्याण का द्वार खोल दिया।

शास्त्रीजी महाराज एक बात बारबार कहते थे कि भक्त को रावण या शूर्पणखा जैसा भक्त नहीं बनना चाहिए, किन्तु विभीषण जैसा भक्त बनना चाहिए। रावण के मन में सीता के प्रति प्रेम था तो राम के प्रति क्रोध। इस कारण उसका सिर अलग कर दिया गया। उसी तरह यदि किसी का उत्तम भक्त गुणातीत से प्रेम हो और श्रीहरि से द्रोह करे तो उसका सिर अलग होगा ही। शूर्पणखा को राम से तो प्रेम था, किन्तु सीताजी से द्वेष था तो नाक-कान काट लिए गए। इस प्रकार श्रीहरि के साथ तो प्रीत होगी किन्तु

---

43. *अतो यत्र मंदिरे एकैव श्रीकृष्णामूर्तिः स्यात्तत्रापि राधादिसेवकमण्डलसहित एव श्रीकृष्णो भावनीय इति आशयः।* (शिक्षापत्री भाष्य, पृ. 439)

44. *राधादयस्तु नित्यमुक्ताः। एतेन एतद्योगेन परस्य ब्रह्मणः कथमुपास्यता घटेतेति शङ्कायाः नावकाशः।* (शि. भा. टीका पृ. 439-40)

उत्तम भक्त गुणातीत का द्रोह होगा, तो वह अपने नाक कान कटवाएगा। विभीषणजी को उपासना की सही समझ थी, 'राम-लक्ष्मण-जानकी, जय बोलो हनुमान की।' उसी तरह हमें भी उत्तम भक्त-धाम, भगवान-धामी और उनके सम्बंधवाले मुक्तों के साथ प्रीत रखनी चाहिए, किसी का भी द्रोह नहीं करना चाहिए।

सद्. गुणातीतानंद स्वामी मूल अक्षर क्यों हैं ?

श्रीहरि ने परमहंसों को अपने प्रकट होने का कारण बताते हुए कहा, '**आज तो मेरा प्रयोजन एही है ज्यों अविद्याकुं नाश करना,** जीवोंकुं ब्रह्मरूप करना' अनादि काल से जीव के साथ माया चिपकी हुई है, उसे दूर करके जीव को ब्रह्मरूप करने तथा ब्रह्म का तत्त्वों सहित ज्ञान देने के लिए श्रीहरि इस पृथ्वी पर अक्षरब्रह्म को साथ लाए थे।

सद्गुरु प्रेमानंद स्वामी के कीर्तन में श्रीहरि के इन शब्दों को गूंथा गया है :

मूल मायानां बंधन कापवा आव्या,
धामधामना वासी आदि बोलाव्या राज... धर्मने (2)
मूल अक्षर पण श्रीहरि संगे,
मुक्त मंडळने लाव्या उमंगे राज... धर्मने (3)

माया के बंधन काटने के लिए विभिन्न धामों के वासी उनके साथ-साथ आए। श्रीहरि, मूल अक्षर और अक्षर मुक्तों को भी प्रसन्नतापूर्वक अपने साथ इस पृथ्वी पर लाए।

श्रीहरि अपने अक्षरधाम को साथ लेकर इस पृथ्वी पर प्रकट हुए। यह अक्षरब्रह्म कौन है? यह प्रश्न स्वाभाविक रूप से उठता है। संप्रदाय का ऐतिहासिक अध्ययन यह बताता है कि प्रारम्भिक दिनों में श्रीहरि की महिमा और सर्वोपरि स्वरूप की निष्ठा में विश्वास करना अनेक के लिए कठिन था। फिर अक्षरब्रह्म की बात तो समझ में कहाँ से आती? किन्तु उन्हों ने समय-समय पर हरिभक्तों और परमहंसों के समक्ष अक्षरब्रह्म के रहस्य का उद्घाटन किया और जिन्हें श्रीहरि में श्रद्धा एवं विश्वास था, उन्होंने इस बात को स्वीकार किया कि उनका दिव्य धाम और कोई नहीं केवल मूर्तिमान

अक्षरब्रह्म गुणातीतानंद स्वामी हैं। श्रीहरि ने प्रसंग आने पर अक्षर की पहचान कराई और शास्त्रों के माध्यम से भी अक्षरब्रह्म की महानता और महिमा का वर्णन किया। इसके अतिरिक्त परमहंसों ने गुणातीतानंद स्वामी अक्षरब्रह्म हैं, उसके लिए जो प्रामाणिक घटनाएँ लिखी हैं, हमारी दृढ़ता के लिए उसे पढ़ लेना आवश्यक है।

(1) शास्त्रीय प्रमाण

संवत् 1866 (सन् 1810) पौष सुदी पूर्णिमा के दिन श्रीहरि ने डभाण में महाविष्णुयाग किया और बड़ी धूमधाम के साथ मूलजी शर्मा को भागवती दीक्षा दी। उस समय श्रीहरि ने मूलजी शर्मा की महानता लोगों के सामने प्रकट की। उसका विवरण आदि श्री रघुवीरजी महाराज ने इन शब्दों में किया है :

मूलजीशर्मणे दीक्षां ददानस्य प्रजायते ।
भूयान्मेऽत्र समानन्दो यतो धामाक्षरं स मे ॥
मुक्तैरनन्तैः साकं मे यत्राऽखण्डतयोष्यते ।
ऊर्ध्वाधोभागरहितं तन्मूलं धाम चाक्षरम् ॥

(श्रीहरिलीलाकल्पतरु : 7-17-49, 50)

'अर्थात् मूलजी शर्मा, जिनका जन्म भादरा में हुआ है, उनको आज भागवती दीक्षा देते हुए मुझे बहुत प्रसन्नता हो रही है। इस अक्षरधाम का न आदि है, न अंत है। अनंत मुक्तों के साथ मैं इसमें सदा से रहता हूँ।

पुरुषोत्तम चरित्र[45] में लिखा है :

वंदुं गुणातीतानंद स्वामी, जेही पर रीझे अंतर्यामी ।
भगवद्वार्ता सतत करही, ध्यान धर्मनंदन को धरही ॥
उत्तमकुलमां धरी अवतार, श्रीहरि काज तज्यो संसार ।
रखे धर्म पुनि धर्म रखावे, आदि ही अक्षर आप कहावे ॥

'जिस गुणातीतानंद स्वामी पर अंतर्यामी (भगवान) रीझ गए, मैं उन गुणातीतानंद को वंदन करता हूँ। उन्होंने (गुणातीतानंद स्वामी ने) निरंतर

45. भादरा में श्रीजीमहाराज ने गुणातीतानंद स्वामी की महिमा बताई थी, उसीका वर्णन इस ग्रंथ के रचयिता लेधिका के दरबार अभयसिंहजी ने किया है।

आध्यात्मिक-भगवान सम्बंधी बातें कही और धर्म के पुत्र श्रीहरि का ध्यान किया। उत्तमकुल में उनका जन्म हुआ, भगवान के कार्य के लिए उन्होंने संसारी जीवन छोड़ दिया। उन्होंने स्वयं धर्म का पालन किया और दूसरों से भी धर्म का पालन करवाया और वे मूल अक्षर के नाम से जाने गए।'

❀

श्री विहारीलालजी महाराज ने 'कीर्तनकौस्तुममाला' में लिखा है' :

'अक्षरमूर्ति गुणातीतानंद स्वामी, तेणे आप्यां वर्तमान ।
पोते पाळीने पछी पळाव्यां, जनने दई घणुं ज्ञान ॥
आवोजी अवतारी, आनंदकारी, प्रीतम जीवनप्राण ।'
गुणातीतानंद मूल अक्षर ध्यानी, श्री हरिनुं मन शुकजी ज्ञानी ।
बेउ मळी उतारे हरिनी आरती रे ॥
आजे नटवरजीने नीरखी हरख उरे अति रे ।'

'अक्षरमूर्ति गुणातीतानंद स्वामी ! आपने मुझे पंचवर्तमान पालने की दीक्षा दी। पंचवर्तमान का पालन पहले आपने किया, बाद में सबसे करवाया, जन-जन को आपने बहुत ज्ञान दिया। हे अवतारी श्रीहरि ! आनंद देनेवाले, अतिशय प्रिय आप हमारे जीवन-प्राण के समान हैं, आइए, पधारिये, हम आपका हृदय से स्वागत करते हैं। मूल अक्षर गुणातीतानंद स्वामी बड़े ध्यानी हैं, भगवान श्रीहरि सहजानंद स्वामी के मन शुकमुनि जैसे ज्ञानी हैं। दोनों मिलकर भगवान की आरती उतार रहे हैं। आज नटवरजी को (श्रीहरि को) देखकर हृदय में अतिशय आनंद हो रहा है।

❀

ब्रह्मचारी कृष्णानंदजी ने लिखा है :

'धाम धामी ज साथे पधार्या, स्वामी ने महाराज ।
एकांतिक धर्म स्थापवा बनी, अलौकिक जोड़ी आज रे ॥
आवो हे अविनाशी, सुखना राशि, अक्षरना आधार ।
दयालु तमे दया करी लाव्या, मूल अक्षरने साथ ॥
गुणातीतानंद नाम छे जेनुं, पाड्युं छे पोते हो नाथ रे ।
आवो हे अविनाशी, सुखना राशी, अक्षरना आधार ॥'

'एकांतिक धर्म की स्थापना करने के लिए, धाम और धामी, स्वामी

और महाराज की अलौकिक जोड़ी आज पधारी है। सनातन आनंद के राशि, अक्षर के आधार हम आपका स्वागत करते हैं।'

'दयालु (भगवान स्वामिनारायण) दया करके मूल अक्षर को अपने साथ लाए, उनका आपने गुणातीतानंद नाम रखा है। हे सनातन आनंद के भंडार, अक्षर के आधार! हम आपका स्वागत करते हैं।'

जूनागढ़ के जयराम ब्रह्मचारी, अखंडानंद ब्रह्मचारी और जगदीशानंद ब्रह्मचारी के कीर्तनों में भी ऐसे ही भाव मिलते हैं।

(2) श्रीजीमहाराज के शब्दों में गुणातीतानंद स्वामी अक्षर हैं

संवत् 1864 (सन् 1808) में श्रीहरि भादरा पधारे थे। मूलजी भक्त ने महाराज को भोजन के लिए निमंत्रित किया। उस अवसर पर श्रीहरि ने पहली बार गुणातीतानंद स्वामी को मूल अक्षर कहा था। मूलजी की माताश्री से बातें करते हुए श्रीहरि बोले, 'माँ, आप तो नहीं समझ पाओगी, किन्तु आपका पुत्र (मूलजी) तो **हमारा रहने का साक्षात् अक्षरधाम है।** यह हमारे साथ बँधे हैं, हम इनके साथ बँधे हैं। हमारा यह बंधन अटूट है ।' वहाँ जो हरिभक्त एकत्र हो गए थे उनसे भी श्रीहरि ने विस्तार से बातें कही कि मूलजी भक्त अक्षरब्रह्म हैं। ऐसा कहकर मूलजी की भक्तों से अपार महिमा कही थी।[46]

संवत् 1805 (सन् 1849) जूनागढ़, जन्माष्टमी महोत्सव के पश्चात् सद्गुरु गोपालानंद स्वामी ने भादरा के हरिभक्तों से कहा कि वे बातें याद करो, जो श्रीहरि ने मूलजी भक्त के बारे में आप भक्तों से कही थीं। इससे इस बात का अधिक प्रचार हुआ।

संवत् 1868 (सन् 1812) होली, राठोड धाधल के घर में होली का उत्सव मनाया जा रहा था। महाराज ने संतों के साथ रास खेला। श्रीहरि ने उस समय कबीर द्वारा रचित होली का एक पद गाया :

'जोगिया टालत जनम केरा फांसला रे,
प्रेमना प्याला जोगिया, जुगजुग जीवो सो जोगिया...

---

46. विस्तृत जानकारी के लिए देखें 'भगवान श्री स्वामिनारायण' (द्वितीय आवृत्ति) भाग-2, पृ. 337, 'अक्षरब्रह्म गुणातीतानंद स्वामी' भाग-1, पृ. 50.

कोटि कृष्ण जोड़े हाथ, कोटि विष्णु नमे माथ,
कोटि शंकर धरे ध्यान, कोटि ब्रह्मा कथे ज्ञान;
सद्‌गुरु खेले वसंत...'

अंत में श्रीहरि ने पूछा, 'ऐसे सद्‌गुरु कौन हैं ?'

इससे पूर्व लोज और मांगरोल में श्रीहरि ने कहा था, 'मैं ही वह सद्‌गुरु हूँ।' इसलिए साधुओं ने उत्तर दिया, 'आप ही वह सद्‌गुरु हैं।'

उन्हों ने उस समय अपनी छड़ी गुणातीतानंद स्वामी की छाती पर रखते हुए कहा, 'मैं तो सर्वोपरि पुरुषोत्तम नारायण हूँ। इस पद में जिस सद्‌गुरु की महिमा का वर्णन किया गया है **वे सद्‌गुरु तो गुणातीतानंद स्वामी हैं। गुणातीतानंद स्वामी, अक्षरधाम के रूप में, मेरे और अनंत मुक्तों के रहने का धाम हैं और साकार रूप में यहाँ और अक्षरधाम में हमारी सेवा करते हैं। सर्वोपरि उपासना को फैलाने के लिए सद्‌गुरु के रूप में मेरे साथ प्रकट हुए हैं ।'**[47]

❀

एकबार वरताल में गुणातीतानंद स्वामी रोगी साधुओं की गुदड़ियों को गोमती सरोवर से धोकर आ रहे थे। श्रीहरि वासन सुथार के घर से भोजन करके लौट रहे थे। दोनों की भेंट हनुमान द्वार पर हो गई। स्वामी की वृत्ति श्रीहरि की मूर्ति में एकाग्र हुई। उनको वहीं रुकना पड़ा। अठारह गुदड़ियों के भार से स्वामी पसीना-पसीना हो रहे थे। श्रीहरि को भी पसीना होने लगा। थोड़ी देर के पश्चात् श्रीहरि ने चलने की इच्छा व्यक्त की, 'साधुराम अब चलें?' स्वामी ने कहा, 'महाराज, पधारें।' सभा में पहुँचते ही श्रीहरि ने कहा, 'मुझे पसीना हो रहा है, ऐसा लगता है कि मैं भारी बोझ ढो रहा हूँ।' भगुजी और बापू रतनजी तुरंत पंखा चलने लगे। तब श्रीहरि ने कहा, 'उस साधु के कंधों पर गुदड़ियों का जो बोझ है उसे उतार लो, तो हमारा बोझ हलका हो जाएगा।' भगुजी ने स्वामी के कंधे से सभी गुदड़ियाँ नीचे उतार लीं। श्रीहरि ने मुक्तानंद स्वामी, ब्रह्मानंद स्वामी और अन्य साधुओं को बुलाया और कहा, 'जैसे सँड़से में साँप पकड़ा जाता है, उसी तरह ये साधु तीनों अवस्थाओं में

47. यह प्रसंग राठोड़ धाधल ने जसा गोर को तथा नागजी सेठ को कहा था। उनके द्वारा शास्त्रीजी महाराज ने सुना था।

(हर समय) मेरी मूर्ति को पकड़े रखते हैं। (अर्थात् हमारी मूर्ति को निरंतर देखते हैं) **ये हमारे रहने का साक्षात् अक्षरधाम हैं । सबसे श्रेष्ठ हैं और बड़े-बड़े सत्पुरुषों के लिए समागम करने योग्य हैं।'**[48]

❀

जूनागढ़ मंदिर की महंताई का हार श्रीहरि ने स्वामी को पहनाया और अपनी सभी पोषाक स्वामी को प्रसाद के रूप में दे दीं। स्वामी के सिर पर अपनी पगड़ी अपने ही हाथों से रखकर आशीर्वाद दिए।[49] गाँव के हरिभक्त कुरजी दवे उस सभा में उपस्थित थे। श्रीहरि ने उन्हें स्मरण दिलाया, 'भुजनगर से रामानंद स्वामी दर्शन देने के लिए पधारे थे, तब यह शुभ समाचार आपने मुझे लोज में दिया था। भक्तों ने प्रसन्न होकर आपको विभिन्न प्रकार की भेंट दी थी। तब मैंने आपसे कहा था कि समय आने पर मैं अपना अक्षरधाम तुम्हें भेंट करूँगा। तब आप मेरी बात का अर्थ नहीं समझे थे। किन्तु **आज मैं अपना अक्षरधाम-गुणातीतानंद स्वामी** - सोरठ के हरिभक्तों को उपहार में दे रहा हूँ। सोरठ प्रदेश के सत्संगियों को हम अपना सुख अधिक नहीं दे सके अत: **ये साधु हमारा सर्वस्व हैं इन्हें हम आपको अर्पण कर रहे हैं।'**

❀

संवत् 1884 (सन् 1828) की शीतऋतु चल रही थी। स्वामी अंगीठी रखकर ताप ले रहे थे। अधिक देर तापने से स्वामी को गर्मी लगने लगी। ठीक उस समय गढ़डा में श्रीहरि ने कहा, 'मुझे गर्मी लग रही है, मुझे स्नान करना है! ठंडा पानी लाओ।' यह सुनकर सब आश्चर्य चकित हुए। मुक्तानंद स्वामी ने तो इसका कारण भी पूछ लिया। श्रीजीमहाराज ने उत्तर दिया, 'मेरे अक्षरधाम को गर्मी लगती है, इसी कारण यहाँ मुझे भी गर्मी लग रही है।'

मुक्तानंद स्वामी ने कहा, 'महाराज! अक्षर तो शीतल एवं शांत है, फिर शरीर क्यों तप रहा है?'

---

48. यह प्रसंग शुकानंद स्वामी ने गढ़डा के सिद्धानंद स्वामी के शिष्य कृष्णचरणदास को कहा था। उनके द्वारा शास्त्रीजी महाराज ने महुवा में सुना था।
शास्त्रीजी महाराज लिखित पत्र में से - स्वा. प्रकाश, जनवरी 1987

49. पुरुषोत्तम चरित्र - पृ. 100.

श्रीहरि ने कहा, '**हमारा मूर्तिमान अक्षरधाम गुणातीतानंद स्वामी,** अंगीठी रखकर ताप रहे हैं। अधिक ताप से वे तप गए हैं। इससे मैं भी तप गया हूँ।'

❀

एकबार स्वामी गढ़डा में घेला नदी में स्नान कर रहे थे। अचानक उनका एक पैर पत्थर के बीच फँस गया। प्रयत्न करने पर भी निकला नहीं । महाराज ने दिव्य दर्शन देकर धीरे से पैर निकालने के लिए कहा। उस समय महाराज अक्षर ओरड़ी में कह रहे थे, 'मेरा पैर निकालो, नहीं तो हड्डी टूट जाएगी।'

मूलजी ब्रह्मचारी ने पूछा, 'महाराज ! आप तो चारपाई पर बैठे हैं, तो पैर कैसे टूटेगा?'

महाराज बोले, '**हमारा धाम गुणातीतानंद स्वामी** का पैर शिलाओं के बीच फँस गया था, बड़ी कठिनाई से निकला है।'

❀

जब श्रीहरि ने स्वधाम जाने का निर्णय कर लिया, तब उन्होंने आत्मीय साधुओं एवं हरिभक्तों से कहा : 'जाइए, आप सब गुजरात की तीर्थयात्रा कर आइए।' तब गोपालानंद स्वामी ने महाराज से कहा, 'महाराज! जूनागढ़ के महंत गुणातीतानंद स्वामी पधारे हैं। उनको आपसे बहुत प्रेम है। आपकी विरह की वेदना वे सहन नहीं कर सकेंगे। उन्हें जूनागढ़ वापस जाने के लिए कहिए।'

यह सुनकर श्रीहरि बोले, 'स्वामी! **गुणातीतानंद स्वामी तो हमारे गुणातीत अक्षरधाम हैं। मैं उन्हें कैसे दूर कर सकता हूँ ? वे जहाँ हैं, वहीं मैं हूँ और जहाँ मैं हूँ, वहीं वे हैं। उनको हम से पृथक् कैसे किया जा सकता है ?!**'

एकबार पंचाला गाँव में मुक्तानंद स्वामी और भायात्मानंद स्वामी के बीच में गुणातीतानंद स्वामी भोजन करने बैठे थे। श्रीहरि ने यह देखकर वंथली गाँव के कल्याणभाई से कहा, 'देखा! दो बाघों के बीच में बकरी फँस गई है!' फिर हँसते हुए उन्होंने अपनी उँगली का संकेत गुणातीतानंद स्वामी की ओर किया और कल्याणभाई से पूछा, 'कल्याणभाई, क्या तुम इस साधु को जानते हो? यह तो मेरा अक्षरधाम है। इनकी पहचान अच्छी तरह कर लेना।'

श्रीहरि के मुख से गुणातीतानंद स्वामी की अपूर्व महिमा

भगवान ही अपने उत्तम भक्तों की महिमा को समझते हैं और समझा सकते हैं। श्रीहरि ने यह स्पष्ट जानकारी हमें करवाई कि अपने उत्तम भक्त गुणातीतानंद स्वामी, अक्षरब्रह्म के अवतार हैं इसके अतिरिक्त, उचित अवसरों पर उन्होंने अपने अनादि सेवक की अद्वितीय महिमा भी समझाई है। यहाँ कुछ ऐसे ही प्रसंग प्रस्तुत हैं :

❀

संवत् 1877 में (सन् 1821) पंचाला में श्रीहरि ने सभी परमहंसों को अपने भाल पर तिलक लगाना सिखाया। सर्व प्रथम श्रीहरि ने गुणातीतानंद स्वामी के भाल पर तिलक अंकित किया और घोषणा की, **'देखो, यह मेरा तिलक! इसके समान कोई साधु नहीं है और मेरे समान कोई भगवान नहीं।'**

❀

परमहंसों के जीवन में धर्मपालन की दृढ़ता बढ़ती रहे, इसी कारण श्रीहरि ने आज्ञा दी कि सभी एक दूसरे के साक्षी (ज़ामिन) बने। इसी प्रसंग पर गुणातीतानंद स्वामी जूनागढ़ पधारे। स्वामी की साक्षी (जमानत) लेने के लिए अब कोई साधु बाक़ी नहीं रहा था। तब ब्रह्मानंद स्वामी ने पूछा, 'अब गुणातीतानंद स्वामी का साक्षी (जमानती) कौन होगा ?' श्रीहरि ने कहा, **'मैं तो इनका अनादि का ज़ामिन हूँ।'**

❀

स्वामी, श्रीहरि के दर्शन के लिए गढ़डा पधारे। शुकानंद स्वामी, गुणातीतानंद स्वामी के बैठने के लिए चटाई ढूँढने लगे। तब श्रीहरि ने शुक स्वामी से कहा, **'इनकी महानता आसन से नहीं है, इनकी महानता तो अनादि से है।'**

एकबार श्रीहरि ने मुक्तानंद स्वामी, ब्रह्मानंद स्वामी, नित्यानंद स्वामी, आनंद स्वामी, गुणातीतानंद स्वामी आदि अठारह सद्‌गुरुओं को दरबार भवन में एक साथ भोजन के लिए बिठाया। श्रीहरि स्वयं भोजन परोसने लगे। फिर उन्हों ने संतों से कहा, 'भोजन कैसे करना चाहिए यह आप सब गुणातीतानंद स्वामी से सीखें।'

तब ब्रह्मानंद स्वामी ने विनोद में कहा, 'साधु अच्छे खानेवाले हैं।'

यह सुनकर श्रीहरि बोले, 'आप जो कह रहे हैं, वह मेरा अभिप्राय नहीं है। क्योंकि यह साधु तो मेरी मूर्ति का स्वाद लेते हैं और जैसे कोठी में अन्न भरा जाता है वैसे यह अन्न पेट में भरते हैं। **ये अपना सामर्थ्य ढककर रखते हैं, नहीं तो हमारे पीछे जितने लोग फिरते हैं उतने मनुष्य इनके पीछे फिरें।'**

श्रीहरि के अभिप्राय से सहमत होते ही ब्रह्मानंद स्वामी बोल उठे: 'हाँ महाराज, ये तो बहुत महान संत हैं।'

❀

गढ़डा की सभा में श्रीहरि ने जब गुणातीतानंद स्वामी को जूनागढ़ मंदिर का महंत घोषित किए, तब कहा था, 'जो स्वामी के साथ जूनागढ़ जाएँगे, उनके करोड़ जन्मों की कमी एक जन्म में ही हम दूर कर देंगे।'

❀

संवत् 1884 (सन् 1828) में श्रीहरि ने जूनागढ़ मंदिर में मूर्तियों की स्थापना की। जब वे विदा ले रहे थे, तब जूनागढ़ के नवाब हामद खान ने कहा, 'हे महाराज! आप यहीं रहिए।' इस पर श्रीहरि ने कहा, '**हम नहीं तो हम जैसा रखेंगे**।' ऐसा कहकर गुणातीतानंद स्वामी को जूनागढ़ में रखा।

❀

जूनागढ़ मंदिर की मूर्तिप्रतिष्ठा के अवसर पर श्रीहरि ने संप्रदाय के आश्रित संतों को प्रतिवर्ष एक मास जूनागढ़ में स्वामी के सान्निध्य में रहने की आज्ञा की थी:

'वळी, संतने आपी आगन्या रे,
रे'वुं नहि आहीं आव्या विना रे;
वरसो वरस एक मास रे,
करवो आ मंदिर मांही वास रे।'

(नि. का. पुरुषोत्तमप्रकाश - 32)

संप्रदाय के आश्रित समस्त संतों के लिए की गई इस आज्ञा का रहस्य यह है कि श्रीहरि की सर्वोपरि उपासना और उनकी महिमा को दृढ़ करने के लिए जूनागढ़ में स्वामी के साथ रहकर सत्संग करना अनिवार्य है । कारण, अक्षर के संग से ही जीव अक्षररूप हो सकता है और पुरुषोत्तम की महिमा की अनुभूति

कर सकता है। श्रीहरि की इस आज्ञा की परिपूर्ति के लिए सद्‌गुरु गोपालानंद स्वामी प्रतिवर्ष जूनागढ़ जाते थे। जिस वर्ष न जा सके, तो अगले वर्ष दो मास के लिए स्वामीश्री के साथ रुक जाते और कथावार्ता का लाभ लेते थे।

संप्रदाय में कुछ लोग ऐसा कहते हैं कि गुणातीतानंद स्वामी पढ़े लिखे नहीं थे और जूनागढ़ का मंदिर दूर एक कोने में पड़ता था, इसलिए श्रीहरि ने ऐसी आज्ञा देकर गुणातीतानंद स्वामी को संतों का संग प्रदान किया। लोगों के ये दोनों ही तर्क कमज़ोर और भ्रामक हैं। वे यह नहीं जानते कि जो अक्षरब्रह्म है वही संसार को ज्ञान देनेवाला है, उसे दूसरों से ज्ञान लेने की आवश्यकता नहीं है। वेद भी उसे नेति-नेति कहते हैं। जो भी 'स्वामी की बातें' पढ़ता है, उसे यह निश्चय हो जाता है कि **गुणातीतानंद स्वामी ब्रह्मविद्या के स्त्रोत हैं,** और संप्रदाय के समस्त साधुओं को उनके सत्संग में रहने की आवश्यकता है। इसीलिए संप्रदाय में 'स्वामी की बातें' का विशिष्ट स्थान है। अन्य परमहंसों की बातों की अपेक्षा संप्रदाय के संत 'स्वामी की बातें' का प्रमाण के रूप अधिक उपयोग करते हैं।

❀

जब श्रीहरि ने धाम में सिधारने का निश्चय कर लिया तब उन्होंने स्वामी को जूनागढ़ से अपने पास बुला लिया और स्वामी से एकांत में मिले और बोले

'मीठा व्हाला केम विसरुं, मारुं तमथी बांधेल तन हो...
तरस्याने जेम पाणीडुं व्हालुं, भूख्याने भोजन हो... मीठा ।'

'हे मेरे प्रिय, मैं तुम्हें कैसे भूल सकता हूँ। मेरा तुमसे अविच्छिन्न संबंध है। जैसे प्यासा पानी से और भूखा भोजन से स्नेह करता है, वैसा ही मेरा तुमसे स्नेह है।'

गुणातीतानंद स्वामी के स्वमुख से 'स्वयं अक्षर हैं' ऐसी पहचान करानेवाले प्रसंग

माया से परे दो तत्त्व हैं : ब्रह्म और परब्रह्म। वे मायिक इन्द्रियों एवं अंत:करण से सही रूप में नहीं पहचाने जा सकते। उनको तभी पहचाना जा सकता है, जब वे ही कृपा करके अपने स्वरूप की पहचान करा दें। गुणातीतानंद स्वामी ने निजाश्रित सैंकड़ों संतों-हरिभक्तों को कृपा करके

अपने अक्षर स्वरूप की पहचान कराई थी। यहाँ ऐसी कुछेक घटनाओं का विवरण प्रस्तुत है :

गोपालानंद स्वामी ने उत्तर भारत से आए साधु केशवजीवनदास से कहा कि 'गुणातीतानंद स्वामी अक्षर का अवतार हैं, और तुम स्वामी के सत्संग के लिए जूनागढ़ जाओ।' वे जूनागढ़ गए किन्तु वहाँ उन्होंने अक्षर के विषय में अलग-अलग लोगों से अलग-अलग बातें सुनीं, तो वे संशयग्रस्त हो गए। अतः उन्होंने सीधे गुणातीतानंद स्वामी से ही पूछा, 'स्वामी! गोपालानंद स्वामी ने मुझे समझाया था कि आप अक्षर हैं। प्रागजी भक्त और जागा भक्त भी आप को अक्षर कहते हैं। किन्तु कुछ लोग ब्रह्मानंद स्वामी को तो कुछ लोग मूलजी ब्रह्मचारी को 'अक्षरब्रह्म' कहते हैं, इसमें सत्य क्या है? स्वामी, मुझे आप पर विश्वास है, अतः कृपया स्पष्ट समझाइए।'

गुणातीतानंद स्वामी ने शांतभाव से कहा, 'तुम मुझमें विश्वास रखते हो **तो तुम मुझे अक्षर मानो। मैं ही मूर्तिमान अक्षर हूँ। दूसरा जो भी अक्षर होने का दावा करेगा तो मैं उसके साथ निपट लूँगा !**' गुणातीतानंद स्वामी के इन वचनों से वे पूर्ण आश्वस्त हो गए कि स्वामी मूर्तिमान अक्षर ही हैं, ऐसा विश्वास हो जाने के पश्चात् वे सबको यही समझाते रहते थे कि गुणातीतानंद स्वामी मूर्तिमान अक्षर हैं।

गुणातीतानंद स्वामी की प्रसिद्धि दिन दूनी रात चौगुनी बढ़ रही थी। और उतनी ही तीव्रता से कुछ साधुओं में ईर्ष्या की अग्नि भी भड़क रही थी। किसी ने केशवजीवनदास को चेतावनी दी, 'तुम भले ही जानते हो कि स्वामी अक्षर हैं, किन्तु यहाँ वरताल में ऐसा मत कहो। यदि तुम ऐसा कहोगे, तो तुम्हें श्वेतवस्त्र धारण करवाकर बहिष्कृत कर दिया जाएगा।'

केशवजीवनदासजी को स्वामी के शब्दों में अटूट आस्था थी और जानते भी थे कि स्वामी अक्षरब्रह्म हैं अतः वे निर्भीक होकर बोले, '**कहूँगा, कहूँगा, कहूँगा... श्वेत क्या काले वस्त्र पहनकर भी मैं स्वामी को अक्षर कहूँगा ।**' इसके पश्चात् श्री भगवत्प्रसादजी महाराज ने उनके भगवे वस्त्र उतरवाकर श्वेत वस्त्र पहना दिए । इस अपमान के पश्चात् भी वे स्वामी को अक्षर कहकर सत्यसिद्धांत का प्रवर्तन करते रहे।

❀

संवत् 1923 (सन् 1867) के वर्ष में गुणातीतानंद स्वामी चैत्री पूर्णिमा के उत्सव में भाग लेने के लिए वरताल आ रहे थे। पवित्रानंद स्वामी आदि ने पहले से ही आयोजन कर रखा था कि स्वामी वरताल की सीमा पर आएँ, तब किसी भी प्रकार से उनका स्वागत सत्कार न हो, किन्तु जब समाचार आया कि गुणातीतानंद स्वामी तो उत्सव में भाग लेने के लिए पहुँच गए हैं, तो पूरी सभा उठकर गाँव के बाहर की और दौड़ पडी। स्वामी के चरण छूने के लिए इतनी भीड़ जमा हुई थी कि पूरी धरती दंडवत् प्रणाम करते भक्तों के श्वेत वस्त्रों से अच्छादित हो गई! पूर्व आयोजन व्यर्थ हो गया, तब आचार्य रघुवीरजी महाराज के बड़े भाई गोपालजी दादा ने स्वामी को डाँटने का काम अपने सिर पर लिया। अचानक वे चिल्लाने लगे, 'प्रेम में पागल होकर सब अफरा-तफरी मचाते हो और स्वामी भी भगवान बनना चाहते हैं, कोई कुछ कहता भी नहीं है।'

यह सुनकर स्वामी तुरंत सभा में उठकर खड़े हो गए और ऊँचे स्वर में बोले, 'कोई हमें भगवान न कहे। केवल सहजानंद स्वामी ही सर्वोपरि, सर्व कारणों के कारण भगवान हैं और **शास्त्र में जिसे 'मूल अक्षर' कहा है वह आज आपके सामने सभा में बात कर रहा है। उसको वैसा ही जानो।'**

इतने विरोध में भी स्वामी नि:संकोच एवं निडरतापूर्वक अपने अक्षरब्रह्म स्वरूप को स्पष्ट करते रहे थे। उनकी स्पष्ट वाणी सुनकर सब शांत हो गए।

❀

सारंगपुर के वाघाखाचर कारणदेह के भाव मिटाने के लिए गुणातीतानंद स्वामी के पास जूनागढ़ गए। स्वामी ने उनको जूनागढ़ आकर कुछ समय तक अपने सत्संग में रहने के लिए कहा था। भगतजी भी वाघाखाचर के साथ थे। रास्ते में भगतजी ने कहा कि 'गुणातीतानंद स्वामी तो मूल अक्षर हैं।' दरबार वाघाखाचर यह बात सुनकर भड़क उठे, किन्तु एक दिन जूनागढ़ मंदिर की बाड़ी में सब सेवा कर रहे थे। सबको आनंदविभोर देखकर वाघाखाचर को अत्यंत आश्चर्य हुआ और महुवा के दामा सेठ से पूछा, 'सब हरिभक्त इतने आनंदविभोर हैं, तो इसका क्या कारण है कि मैं आपकी तरह आनंद का अनुभव नहीं कर रहा हूँ?'

दामा सेठ ने उत्तर दिया, 'बापू, प्रागजी भक्त के वचनों में विश्वास रखो और स्वामी को मूल अक्षर समझो, तब तुम्हें भी वही आनंद आएगा।'

वाघाखाचर ने कहा, 'यदि स्वामी स्वयं ऐसा कहें तो मैं मान लूँगा।' तब प्रागजी भक्त ने ध्यान लगाकर गुणातीतानंद स्वामी का स्मरण किया। प्रागजी भक्त की वृत्तियों से आकर्षित होकर गुणातीतानंद स्वामी बाड़ी में आ गए। वाघाखाचर ने उनसे पूछा, 'स्वामी ! प्रागजी का कहना है कि आप मूर्तिमान मूल अक्षर हैं। क्या यह बात सही है ?'

गुणातीतानंद स्वामी ने उत्तर दिया, 'प्रागजी जो भी कहता है, सत्य ही कहता है।' आश्चर्य के साथ वाघाखाचर ने पुनः पूछा : 'स्वामी! क्या आप स्वयं अक्षर हैं ?' गुणातीतानंद स्वामी ने 'हाँ' कही कि तुरंत वाघाखाचर को विश्वास हो गया कि गुणातीतानंद स्वामी मूल अक्षर हैं, और इसके साथ ही उनकी दृष्टि निरावरण हो गई और उन्हें परम आनंद की अनुभूति हुई।

❀

एकबार नाजा कामळिया जन्माष्टमी के उत्सव पर पधारे। सभा में उन्होंने गुणातीतानंद स्वामी से पूछा, 'स्वामी! हम यह जानते हैं कि श्रीहरि सर्व अवतारों के अवतारी हैं और गोपालानंद स्वामी अक्षर मुक्त हैं। परंतु मूर्तिमान अक्षर को हम कैसे जानें और कैसे समझें ?'

यह सुनकर स्वामी बोले, '**तुम्हारे पास बैठा हुआ जो बातें कर रहा है, वही अक्षर है।**'

❀

महुवा के हरिभक्तों को प्रसंगोपात्त अपना परिचय कराते हुए स्वामी ने कहा था, 'इस समय अक्षरधाम तुम्हारे साथ खेत में कंकड़ चुन रहा है और तुम्हारे साथ पलाश के पत्तों का पात्र बना रहा है।'

❀

जूनागढ़ से स्वामी ने अंतिम बिदा ली और वंथली गाँव पधारे। उस समय कल्याणभाई के पुत्र देवजीभाई ने स्वामी की पूजा की और प्रश्न पूछा, 'स्वामी! हम सब अक्षरब्रह्म के विषय पर बात तो करते हैं, लेकिन अक्षर कैसा होता है ?' स्वामी ने उत्तर दिया, 'जो तुम्हारे घर में बैठे हैं, वे ही अक्षर हैं।'

गुणातीतानंद स्वामी अक्षर हैं - 'स्वामी की बातें' के अनुसार

'अन्य कुछ भी समझने का नहीं है, उतना ही समझने का है कि श्रीजीमहाराज को पुरुषोत्तम समझना तथा ये सभी संत अक्षरमुक्त हैं और यह (स्वयं स्वामीजी) तो मूल अक्षर हैं, मूल अक्षर भी यहाँ देह धारण करके पधारे हैं।' (स्वा. वा. 3/38)

❀

गाँव देवराजिया में उन्होंने कहा, 'देह को छोड़कर जिसे प्राप्त करना था, जिससे मिलना था वे भगवान हमें मिल गए हैं, और देह छोड़कर भगवान को प्राप्त करना था, साधु को प्राप्त करना था, वे भगवान और साधु ये जो हमें मिले हैं वही हैं।' ऐसा गद्दी पर ज़ोर से हाथ पछाड़कर कहा, 'ये जो साधु है वह भगवान का धाम है।' (स्वा. वा. 4/59)

❀

एक हरिभक्त ने पूछा, 'आत्मा क्यों नहीं दिखाई देती ?' तब स्वामीश्री ने उत्तर दिया कि 'दिखाई तो देती है परन्तु जीव मानता नहीं, जब ज्ञान होगा तब मानेगा।' फिर अपनी ओर संकेत करके कहा, 'यह जो साधु है वह ब्रह्म है तथा जो धाम में है वे परब्रह्म हैं।' इस प्रकार मर्म में समझाया।

(स्वा. वा. 6/211)

❀

'अक्षरधाम बहुत ही दूर है परंतु हमारे लिए भगवान ने उसे निकट ला दिया है।' (स्वा. वा. 4/62)

❀

'**यह साधु अक्षर हैं,** उनका दिव्यभाव और मनुष्यभाव एक समझना चाहिए। यह तो अजन्मा हैं। गर्भ में आए ही नहीं और उनकी रीति नट की माया के समान समझनी चाहिए तथा यह तो महाराज के संकल्प के कारण यहाँ दिखाई देते हैं।' (स्वा. वा. 5/184)

सद्‌गुरु गुणातीतानंद स्वामी की असाधारण महिमा - स्वमुख से

पीठवाजाल गाँव में उन्होंने कहा, 'कोई पूछे कि अक्षरधाम कैसा

होगा?' तो हमने तो भगवान को देखा है, अक्षरधाम में रहनेवालों को देखा है, भगवान के निकट रहनेवाले को देखा है, तथा कान में बातें की है, अब तो तेज नहीं दिखाई देता, इतना शेष है। इसलिए **ये साधु हैं इसी में भगवान रहते हैं, अतः विश्वास रखना।'** (स्वा.वा. 4/67)

❀

'ये साधु तो भगवान के निकट रहनेवाले हैं। पलमात्र भी दूर रहें ऐसे नहीं हैं और रहते हैं तो किसी जीव के कल्याण के लिए रहते हैं। इस समय में जैसी बात होती है, वैसी बात दूसरे साधु जन्मभर भी नहीं कर सकते, और करना जानते भी नहीं। जन्मभर अभ्यास करें, तो भी ऐसी बातें नहीं सीख सकते।' (स्वा.वा. 5/20)

❀

'...वर्तमान समय में देह धारण करनेवालों का एक पैर अक्षरधाम में है तथा जिनको ऐसे संत की पहचान हुई है, उनके तो दोनों पैर अक्षरधाम में हैं।' (स्वा. वा. 3/26)

❀

'...यहाँ जो दिखाई देती है, ऐसी ही मूर्ति अक्षरधाम में हैं। उसमें लेशमात्र भी अंतर नहीं है। उसमें तेज अधिक दिखाई देता है, इतना ही अंतर है। ये जो दिखाई देती है वही मूर्ति अक्षरधाम में है ऐसा समझने में जितना संशय उतनी ही अपूर्णता है। अतः दिव्यभाव और मनुष्यभाव को एक समझने से बात बन जाएगी। शेष तो उसके पीछे अपने आप धीरे धीरे समझ में आएगा।' (स्वा. वा. 5/256)

❀

वरताल में स्वामी ने कहा, 'और कुछ नहीं करना है, उनके होकर उन्हीं को जीव सौंप दो, तो इसमें ही सबकुछ आ गया । अक्षरधाम में महाराज वैसे के वैसे ही उत्तर की ओर मुख करके बैठे हैं।' इस प्रकार बात करके (अपनी ओर) पैर के अँगूठे से चोटी तक हाथ की अँगुलि से संकेत करके बताया। (स्वा. वा. 4/91)

❀

'यह तो परदेशी साधु है । तथा महाराज प्रकट हुए तब यह साधु

दिखाई दिए, अन्यथा यह साधु यहाँ होना असंभव हैं।' (स्वा. वा. 4/71, 52)

सद्. गुणातीतानंद स्वामी अक्षर हैं - गोपालानंद स्वामी के शब्दों में

संवत् 1906 (सन् 1850) फाल्गुन मास में सद्गुरु गोपालानंद स्वामी बड़ौदा जिले में नावली गाँव पधारे। एक उत्तर भारतीय संत केशवजीनवदासजी ने उन्हें दण्डवत् प्रणाम किया और रोते हुए गोपालानंद स्वामी से बोले, 'मैं अहमदाबाद प्रदेश का हूँ, किन्तु वरताल में आपके साथ रहता हूँ। इसलिए सब मुझे कहते हैं कि मेरा मोक्ष नहीं होगा।' स्वामी ने उसे धैर्य धारण कराते हुए कहा, 'तू चिंता मत कर, मैं तेरे इस शरीर के साथ ही तुझे अक्षरधाम ले जाऊँगा।'

उसी वर्ष चैत्र मास में गुणातीतानंद स्वामी वरताल पधारे। सद्गुरु गोपालानंद स्वामी ने केशवजीवनदास को गुणातीतानंद स्वामी की पहचान कराई, और कहा, 'मैंने तुझे वरदान दिया था कि मैं तुझे इसी देह से ही अक्षरधाम में ले जाऊँगा, वह वचन तुम्हें याद है? **तो देख, ये गुणातीतानंद स्वामी स्वयं श्रीजीमहाराज के अक्षरधाम हैं।** तुम इनके साथ रहो। वे तुम्हें महाराज का सर्वोपरि ज्ञान समझाएँगे। स्वामी निरंतर बातें करते हैं, तो भी इनके सिर में दर्द नहीं होता, हमारा तो सिर दु:खने लगता है।'

❀

चैत्री पूर्णिमा के उत्सव पर गुणातीतानंद स्वामी वरताल पधारे। दोनों प्रदेशों के आचार्य और वरिष्ठ सद्गुरु भी उत्सव में उपस्थित थे। सभा में संतों की पंक्ति में क्रमश: गोपालानंद स्वामी, नित्यानंद स्वामी, शुकानंद स्वामी और गुणातीतानंद स्वामी बैठे थे। तब भोयका गाँव के हरिभक्त मालजी सोनी ने गुणातीतानंद स्वामी की ओर निर्देश करते हुए, गोपालानंद स्वामी से पूछा, 'स्वामी! ये सद्गुरु कौन हैं?'

गोपालानंद स्वामी ने कहा, 'मैंने तुमसे कहा था न कि मैं तुम्हें अक्षरधाम दिखाऊँगा। **ये गुणातीतानंद स्वामी स्वयं अक्षरधाम हैं।** महाराज ने अनेक बार इनका परिचय अक्षरधाम के रूप में दिया है। इन्हें भलीभाँति पहचान लो।'

सत्संग में यह सैद्धांतिक बात परंपरा से चली आ रही थी। उसकी

सत्यता जानने के लिए शास्त्रीजी महाराज भोयका गए थे और वयोवृद्ध मालजी सोनी से यह बात सुनी। इसके पश्चात् वे योगीजी महाराज और अन्य हरिभक्तों को भी भोयका ले गए, जहाँ मालजी सोनी ने उपर्युक्त वृत्तांत कह सुनाया।[50]

एक दिन महुवा के झीणाभाई, प्रागजी भक्त तथा जागा भक्त ने मिलकर गोपालानंद स्वामी से एक प्रश्न किया। प्रागजी भक्त ने पूछा, 'स्वामी अक्षरधाम में आपके और महाराज के पास अखंड रहने के लिए और सारी कमियों को दूर करने के लिए गृहस्थ रहना चाहिए या त्यागी होना आवश्यक है?'

गोपालानंद स्वामी ने उत्तर दिया, 'श्रीजीमहाराज को सर्व अवतारों के अवतारी पुरुषोत्तम जानकर और **गुणातीतानंद स्वामी श्रीजीमहाराज के निवासरूप अनादि अक्षरधाम हैं** ऐसा समझकर उनमें अपने जीव को जोड़ दें, तो त्यागी रहे, अथवा गृहस्थ रहे तो भी मेरे और श्रीहरि से तनिक भी दूर नहीं है, उसके बिना तो दोनों से दूर ही है।'

संवत् 1905 (सन् 1849) सद्गुरु गोपालानंद स्वामी जन्माष्टमी महोत्सव के लिए जूनागढ़ पधारे। नवमी के दिन भक्तों की सभा को संबोधित करते हुए कहा, 'आप लोग स्वामी को वैसे ठीक-ठीक नहीं जानते जैसे वे हैं। श्रीहरि ने स्वयं मुझसे स्वामी की महिमा कही थी कि **गुणातीतानंद स्वामी मूल अक्षर हैं।**' इसके पश्चात् भादरा के हरिभक्त डोसाभाई, रत्नाभाई और वशराम सुथार से सभा को संबोधित करने के लिए कहा और कहा कि भादरा में सर्व प्रथम श्रीहरि ने गुणातीतानंद स्वामी की जो महिमा बताई थी, वह सभा मैं कह सुनाई।

❀

संवत् 1908 में (सन् 1852) अपने धामगमन से पहले गोपालानंद स्वामी बीमार हो गए थे। तब बड़ौदा के भक्त बापू रायजी, प्रेमानंद आदि ने स्वामी से प्रार्थना की, 'स्वामी ! एक बार बड़ौदा पधारिए।' (पूर्व समय में गोपालानंद स्वामी बहुत समय तक बड़ौदा में रहे थे।)

स्वामी ने उत्तर दिया, 'अब बड़ौदा के सामने दृष्टि नहीं हो सकती।

50. शास्त्रीजी महाराज के रेकॉर्ड किए हुए प्रवचनों में इसका उल्लेख है।

अब तो मेरी दृष्टि अक्षरधाम में जहाँ महाराज (श्रीहरि) विराजते हैं, वहाँ या जूनागढ़ में जहाँ मूर्तिमान अक्षरधाम जो जूनागढ़ के जोगी रहते है, वहाँ टिकी है।' यह सुनकर बोटाद के शिवलाल सेठ ने स्वामी से पूछा, 'मेरी दृष्टि जूनागढ़ के जोगी पर टिकी है। इसका क्या अर्थ है?'

इस पर स्वामी ने उत्तर दिया, '**जूनागढ़ के जोगी गुणातीतानंद स्वामी अक्षरब्रह्म हैं, महाराज के साक्षात् अक्षरधाम हैं। महाराज उनसे अणुमात्र भी दूर नहीं हैं।**'

गुणातीतानंद स्वामी की अद्वितीय महिमा - सद्. गोपालानंद स्वामी के कथनानुसार

गोपालानंद स्वामी जूनागढ़ जा रहे थे, रास्ते में वे गढ़डा में रुके। वहाँ उन्होंने कहा, 'श्रीहरि ने विभिन्न मंदिरों के लिए महंत नियुक्त किए, किन्तु गुणातीतानंद स्वामी उनमें सर्वोत्कृष्ट सिद्ध हुए। नागर समुदाय का विरोध होने पर भी मंदिर का निर्माण पूरा करवाया। उन्होंने मंदिर की आर्थिक स्थिति भी सुधारी और सोरठ देश में सत्संग फैलाया । साधुओं से धर्म-नियम का पालन करवाया । रघुवीरजी महाराज को प्रसन्न किया और साथ-साथ अखंड कथावार्ता करने पर भी एक क्षण के लिए भी श्रीहरि की मूर्ति को नहीं भूले। सम्पूर्ण संप्रदाय में ऐसे सद्गुरु कोई नहीं है। **ये तो सर्वज्ञ हैं, सर्वदक्ष हैं और धन्वंतरि वैद्य हैं।**'

❀

एकबार गोपालानंद स्वामी जूनागढ़ में ठहरे हुए थे। दो-पाँच पार्षद मंदिर के पशुओं के लिए चारा काटकर लाने के लिए पहाड़ियों में जाने ही वाले थे। गोपालानंद स्वामी ने उन्हें सावधान करते हुए कहा, 'भेंसला नामक पहाड़ी पर बादल घिर आए हैं। भारी वर्षा होगी। तुम सभी पानी में भीग जाओगे। इसलिए इस समय घास लेने मत जाना।' आज्ञा मानकर पार्षद लौट आए।

वे लौट रहे थे कि रास्ते में गुणातीतानंद स्वामी मिल गए। उन्होंने कहा, 'ठाकुरजी के नैवेद्य में केवल गाय का दूध उपयोग करते हैं। गायें यदि हरी घास नहीं खाएँगी तो वे दूध नहीं देंगी। अतः तुम लोग जाओ। वर्षा तो देर से आएगी।'

तदनुसार पार्षद लोग घास काटने चले गए। जब वे सब सुरक्षित लौट आए, तभी भारी वर्षा होने लगी। गोपालानंद स्वामी को बड़ा आश्चर्य हुआ। किन्तु जब उन्हें पता चला कि पार्षद लोग गुणातीतानंद स्वामी की आज्ञा से गए थे, तब उन्होंने कहा, '**ओह, यह तो जोगी (गुणातीतानंद स्वामी) की करनी है। मेरे कथन को परिवर्तित करने की शक्ति इनमें ही है।**

❀

संवत् 1908 (सन् 1852) में गोपालानंद स्वामी मृत्युशय्या पर थे। संसार से पूर्ण उदास हो गए थे। उनकी बीमारी को देखकर बोटाद के शिवलाल सेठ का हृदय भर आया। उदास होकर उन्होंने गोपालानंद स्वामी से पूछा, 'स्वामी, अब हमारा कौन सहारा? हम क्या करेंगे?'

तब गोपालानंद स्वामी ने पूछा, 'तुम कौन सा सहारा चाहते हो? यदि तुम्हें संसार-व्यवहार का ज्ञान सीखना है, तो सुंदरियाणा के पूजा सेठ के पास जाओ। यदि तुम्हें संसार-**व्यवहार और मोक्ष दोनों का ज्ञान सीखना हो, तो जूनागढ़ के जोगी गुणातीतानंद स्वामी के पास जाओ । स्वामी जैसे समर्थ कोई साधु नहीं हैं।**'

❀

एकबार गोपालानंद स्वामी ने प्रागजी भक्त से कहा, 'प्रागजी! तुम जूनागढ़ जाओगे? प्रागजी! तुम यदि जूनागढ़ जाओगे तो मैंने जो तुम्हें ब्रह्मरूप करने का वचन दिए हैं, वह पूरा हो जाएगा!'

❀

गोपालानंद स्वामी ने अक्षरधाम गमन के बाद एक रात को जागाभक्त को स्वप्न में दर्शन दिए। जागाभक्त ने पूछा, 'स्वामी! आप तो चले गए, अब मैं क्या करूँ? मेरी तो कोई भी इच्छा पूरी नहीं होती।'

स्वामी ने जागाभक्त की छाती पर चरणारविंद की छाप लगाई और हृदय से लगाकर पूछा, 'तुम क्या करना चाहते हो?'

जागाभक्त ने कहा, 'मैं संसार त्याग कर जूनागढ़ के गुणातीतानंद स्वामी की सेवा करना चाहता हूँ।'

स्वामी ने कहा, '**जूनागढ़ में स्वामी की सेवा करोगे तो मुझे बहुत प्रसन्नता होगी।**'

इस प्रकार गोपालानंद स्वामी की बातें सुन-सुनकर ब्रह्मचारी अचिंत्यानंदजी, माधवचरणदास आदि अनेक त्यागी तथा नथ्थू पटेल, देहाखाचर, जेठाखाचर, मनजी ठक्कर, जीभाई शेलत, नाथजीभाई, करशनभाई देसाई आदि अनेक हरिभक्त गुणातीतानंद स्वामी से जुड़ गए।

गुणातीतानंद स्वामी अक्षर हैं - परमहंसों के शब्दों में

संवत् 1939 (सन् 1883)में घनश्याम महाराज की प्रतिमा सूरत मंदिर में प्रतिष्ठित की गई। गुणातीतानंद स्वामी के कृपापात्र शिष्य प्रागजी भक्त सूरत पधारे थे। उस समय उनकी दृष्टि श्रीहरि के संगी विद्वान परमहंस विज्ञानानंद स्वामी के शिष्य स्वामी यज्ञपुरुषदासजी (शास्त्रीजी महाराज) पर पड़ी। 'गुणातीतानंद स्वामी अक्षर हैं' यह विश्वास कराने के लिए उन्होंने स्वामी विज्ञानानंदजी से प्रार्थना की, 'स्वामी! आपके समय में गुणातीतानंद स्वामी मूल अक्षर हैं, ऐसी बातें हुआ करती थीं। कृपया वे सारे वृत्तांत आज मुझे सुनाईए।' प्रागजी भक्त की बात सुनकर विज्ञानानंद स्वामी ने धीरे से अपनी दृष्टि चारों ओर घुमाई कि कहीं कोई सुन तो नहीं रहा है! जब उन्हें निश्चय हो गया कि कोई नहीं सुन रहा है, तो वे बोले, '**मैंने स्वयं महाराज से ही अनेक बार सुना था कि स्वामी मूल-अक्षर हैं। गोपालानंद स्वामी ने भी बारबार इस सत्य को प्रतिपादित किया, इसलिए यह बात हमारे अंतर्मन में बैठ गई है।**'

इतनी बात जब वे कह चुके तो विज्ञानानंद स्वामी की चारपाई के नीचे छुपे यज्ञपुरुषदासजी बाहर निकले और कहा, 'आपने अभी तक यह बात मुझे क्यों नहीं सुनाई?'

विज्ञानानंद स्वामी ने कहा, 'सुनो, आज भी सत्संग में ऐसे बहुत हैं, जो महाराज को भी पुरुषोत्तम नहीं मानते, तो वे स्वामी को अक्षर कैसे स्वीकार कर सकते हैं? हम श्रोताओं की पात्रता समझकर बात कहते हैं। **किन्तु तुमने जो सुना है, पूर्णतया सत्य है और अपने अंतर में इसी प्रकार समझ रखो।**'

एकबार नृसिंहानंद स्वामी ने इंगोराला गाँव के कुंवरजी पटेल से गढ़डा में पूछा, 'कुंवरजी पटेल, इस गढ़डा मंदिर में कितने कँगूरे हैं?' कुंवरजी पटेल ने उत्तर दिया, 'बहुत-से कँगूरे हैं।' नृसिंहानंद स्वामी ने कहा, 'यदि

गुणातीतानंद स्वामी अक्षरधाम न हों, तो प्रति कँगूरे ब्रह्माण्ड तोड़ने का पाप मुझे लगे। इसलिए मुझ पर विश्वास करो, नहीं तो अपना रास्ता नापो।'

❀

श्रीहरि के निजी सेवक नाजा जोगिया को श्रीहरि के स्वधामगमन के पश्चात् साधु की दीक्षा दी गई। उनका नाम घनश्यामदास रखा गया। एकबार वह ध्यान लगाकर बैठे थे। गुणातीतानंद स्वामी ने उनके ध्यान में उठ रहे संकल्पों को पकड़ लिया और नाजा भगत को टोक दिया। स्वामी के प्रताप को देखकर वे बोले, 'आज तक तो मैं आपको अधीनस्थ (खिराज़ देनेवाला) राजा ही समझता था किन्तु **आप तो चक्रवर्ती हैं। आप वास्तव में अक्षर हैं।'**

स्वामी का असाधारण महिमा - परमहंसों के शब्दों में

एकबार सद्‌गुरु शुकस्वामी ने सूरत में कहा, 'जूनागढ़ में गुणातीतानंद स्वामी बातें करते हैं। उनका श्रीहरि की बातों जैसा प्रभाव होता है।'

❀

सद्‌गुरु नित्यानंद स्वामी ने जूनागढ़ में स्वामी की बातें सुनकर कहा, 'अहोहो! श्रीहरि ने स्वामी के बारे में जैसा बताया था, वैसा तो आज ही समझ पाया हूँ। कितने महान हैं स्वामी! बातों में कितनी शक्ति है! दूसरा कोई ऐसे उपदेश नहीं दे सकता। जिसका ज्ञान वर्तन में न बदला हो, वह भला क्या बोल सकता है? और यदि बोले तो उसका कोई प्रभाव न पड़े । स्वामी की जैसी क्रिया है, वैसी ही उनकी वाणी। कथनी और करनी एक है। संभवत: यदा कदा वे अपनी वाणी में कुछ सत्य बात कहने में संकोच रखते होंगे, परंतु क्रिया में तो श्रीहरि की आज्ञा में रंचमात्र भी फेर नहीं पड़ने देते। उनके द्वारा सारा सोरठ प्रदेश जाग्रत हो गया है।' श्रुति में कहा है :

यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनूं स्वाम् ॥

(कठोपनिषद् : 2/1-23, मुंडकोपनिषद् : 3-2-3)

'जिस पर भगवान की कृपा होती है, उसका ही वे वरण करते हैं ।' स्वामी पर महाराज की अतिशय कृपा है, इसलिए स्वामी **महाराज के स्वरूप हैं।** अपनी कृपा से दूसरों को भी अपने जैसा बना लेते हैं।'

❀

मूली गाँव में सद्‌गुरु ब्रह्मानंद स्वामी ने गुणातीतानंद स्वामी से कहा, 'स्वामी! मैं धाम मैं जा रहा हूँ। किन्तु आप धाम में लौटने की शीघ्रता मत करना, धैर्य रखना। महाराज पुरुषोत्तम हैं, इस ज्ञान को फैलाने के लिए गोपालानंद स्वामी अभी इसी धरती पर हैं। आप भी इस उद्देश्य के लिए यहीं ठहरें। इस सर्वोपरि ज्ञान को फैलाने के लिए ही हम अक्षरधाम से यहाँ अवतरित हुए हैं। आप धाम को तभी लौटना जब इस ज्ञान का महत्तम प्रचार हो जाए।

सद्‌गुरु निष्कुलानंद स्वामी ने अपने कीर्तन में कहा है :

'जेवा ए संत कहीए शिरोमणि, एवा हरि सौ शिरमोड,
निष्कुलानंद निहाळतां न जडे ए बेनी जोड;[51]
अनुप संतने आपुं उपमा....'

'गुणातीतानंद स्वामी संत शिरोमणि हैं। भगवान संतों के मुकुट हैं। निष्कुलानंद कहते हैं, बहुत खोजने पर भी ऐसी जोड़ी नहीं मिलेगी।'

❀

वरताल में एकबार श्रीहरि ने गुणातीतानंद स्वामी को सद्‌गुरु ब्रह्मानंद स्वामी और सद्‌गुरु मुक्तानंद स्वामी के बीच बैठाकर उनकी बहुत महिमा कही। दूसरे दिन गुणातीतानंद स्वामी, मुक्तानंद स्वामी के पास जाकर प्रसादी माँगने लगे। तब मुक्तानंद स्वामी ने कहा, 'बहुत दिनों तक ठगते रहे हो, अब तो प्रसादी नहीं दूँगा। वे दिन अब चले गए।' (अब श्रीहरि ने आपकी महिमा बता दी है।)

❀

गुणातीतानंद स्वामी ने सद्‌गुरु भाई आत्मानंद स्वामी को महाराज के प्रति सर्वोपरि निष्ठा करवा दी। एक दिन स्वामी ने उनके पास प्रसादी माँगी। किन्तु आत्मानंद स्वामी ने कहा, 'अब उलटी गंगा नहीं बहेगी, आज तक तो गंगा उलटी बहती रही, आज ही सीधी हुई है।' (भाई आत्मानंद स्वामी,

---

51. 'इन दोनों की जोड़' अर्थात् श्रीजीमहाराज और गुणातीतानंद स्वामी। यह सिद्धांत सद्‌गुरु निष्कुलानंद स्वामी ने भी प्रवर्तित किया है, क्योंकि उन्हें इन दोनों स्वरूपों की पहचान थी, इसी प्रकार शास्त्रीजी महाराज तथा योगीजी महाराज वरिष्ठ सद्‌गुरुओं द्वारा सुनी हुई बातें ही कहते।

स्वामी से वरिष्ठ साधु थे, इसलिए हमेशा उन्हें प्रसादी देते थे, किन्तु स्वामी द्वारा सर्वोपरि निष्ठा होने के पश्चात् उन्होंने स्वामी की अत्यधिक महिमा जानकर प्रसादी नहीं दी।)

❀

स्वामी के ज्ञान और आचरण से प्रभावित होकर सद्‌गुरु कृपानंद स्वामी कहा करते थे, 'आपको गुरु होने की इच्छा नहीं है फिर भी लोग आपको गुरु बनाएँगे।'

❀

आचार्य श्री रघुवीरजी महाराज ने अपनी पंचग्रंथियों को नष्ट करने की बात स्वामी से कही। गुणातीतानंद स्वामी ने कहा, 'तीर्थयात्री बनकर जूनागढ़ आओ, मैं तुम्हारे अज्ञान को मिटा दूँगा।

रघुवीरजी महाराज ने तुरंत कहा, 'मैं तीर्थवासी बनकर जूनागढ़ न आऊँ तो मेरा नाम रघुवीर नहीं।'

स्वामी ने भी आत्मविश्वास के साथ कहा था, 'मैं भी यदि तुम्हारी ग्रंथियों को नष्ट न कर दूँ तो गुणातीत नहीं!'

रघुवीरजी को स्वामी की अतुल शक्तियों में पूर्ण विश्वास था। वे तीर्थवासी होकर (अहंकार छोड़कर) जूनागढ़ रहे और स्वामी ने उनकी सभी कमियों को दूर कर दिया।

एकबार स्वामी परभाव में आ गए और अलौकिक बातें कहीं। तब रघुवीरजी ने कहा, 'स्वामी! आज तो बहुत गहन बातें कहीं! ये बातें तो करोड़ों जन्म की कमियों को दूर करके साक्षात् अक्षरधाम की प्राप्ति करा दें, ऐसी बातें हैं।'

स्वामी ने तुरंत ही कहा, 'महाराज! **मैं तो एक भी बात नहीं सोचता। श्रीजीमहाराज हमारे अंदर रहकर बोलते हैं।**' इस पर रघुवीरजी बोले, 'हाँ, स्वामी! यह तो प्रत्यक्ष दिखाई दे रहा है कि **आपमें रहकर श्रीहरि ही हमेशा बातें करते हैं।**'

❀

श्रीहरि के निजी सेवक बापू रतनजी, गुणातीतानंद स्वामी का सत्संग लाभ लेने के लिए जूनागढ़ आए। उन्होंने स्वामी से कहा, 'श्रीहरि ने

आपकी महिमा का जैसा वर्णन किया था, वैसा ही मैं आज समझा हूँ। यदि मेरी समझ में कोई कमी हो, कृपया उसे दूर कर दें और सदा कृपादृष्टि रखें। मैं अपनी दृष्टि से स्पष्ट देख रहा हूँ कि श्रीहरि आपके द्वारा अखंड प्रकट हैं। इसलिए मेरी देखभाल आप करना।'

जब जागाभक्त रतनजी को विदा करने गए, तब रतनजी ने जागाभक्त से कहा, 'अद्वितीय वक्ता (गुणातीतानंद स्वामी) एवं तुम्हारे जैसे आदर्श श्रोता केवल जूनागढ़ में ही हैं। श्रीहरि प्रायः कहा करते थे, 'गुणातीतानंद स्वामी जैसे समर्थ साधु कोई नहीं हैं।' बहुत सारे मुक्त श्रीहरि के साथ इस पृथ्वी पर आए थे। किन्तु वे अक्षर के समान महान नहीं हैं। स्वामी की महानता तो भविष्य में जानी जाएगी। इसलिए हमेशा स्वामी की शरण में रहना। स्वामी को तुम कभी बेबसी में मत डालना। श्रीहरि के समय में सतयुग था। युवावस्था में भी निद्रा एवं कामना नहीं थी। वही सतयुग स्वामी की उपस्थिति में यहाँ है। तुम निश्चित समझ लो, स्वामी को प्रसन्न करना श्रीहरि को प्रसन्न करना है।

इसी प्रकार सद्‌गुरु आनंदानंद स्वामी, सद्‌गुरु पवित्रानंद स्वामी, सद्‌गुरु विज्ञानानंद स्वामी और अन्य सद्‌गुरु, लोधिका के दरबार अभेसिंहजी और अन्य हरिभक्तों ने भी स्वामी की महानता का वर्णन किया है। स्थानाभाव के कारण उन्हें यहाँ नहीं दिया है।

'गुणातीतानंद स्वामी अक्षर हैं' - अन्य प्रमाण

अक्षर की बात कोई नई नहीं है। श्रीहरि के समय से ये बातें संप्रदाय में प्रसिद्ध थीं। शस्त्रीजी महाराज ने वरताल से प्रस्थान करते पहले से संप्रदाय में इस बात का उल्लेख होता रहा है।

दादाखाचर के दरबार के जिस कमरे में श्रीहरि रहते थे उस कमरे का नाम '**अक्षर ओरडी**' था! महाराज के रहने का स्थान 'अक्षर' है।

❀

श्रीहरि को जेतपुर (जिला जूनागढ़) में धर्मधुरा सौंपकर पट्टाभिषेक किया गया था। इस स्थान पर निर्मित मंदिर में गुणातीतानंद स्वामी और श्रीहरि की युगल मूर्ति चाँदी के पट पर निर्मित की गई है। उस पट पर

गुणातीतानंद स्वामी की मूर्ति के नीचे '**मूल अक्षरमूर्ति गुणातीतानंद स्वामी**' और श्रीहरि की मूर्ति के नीचे 'पूर्ण पुरुषोत्तम सहजानंद स्वामी' लिखा है।

❀

गुणातीतानंद स्वामी ने गोंडल के पुराने मंदिर में जो वरताल प्रदेश के अंतर्गत गिना जाता है, अपना नश्वर शरीर छोड़ा। आज उस मंदिर में संगमरमर का सिंहासन है, जिसमें अक्षर-पुरुषोत्तम की गुणातीतानंद स्वामी और श्रीहरि की मूर्ति का आज भी दर्शन होता है।

जूनागढ़ मंदिर (वरताल गद्दी की सीमा के अंतर्गत) के सभामंडप में गुणातीतानंद स्वामी का एक भव्य तैल चित्र[52] था। उसके नीचे लिखा था, '**अनादि मूल अक्षरमूर्ति श्री गुणातीतानंद स्वामी।**'

❀

जूनागढ़ मंदिर के सभामंडप में जहाँ स्वामी प्राय: बैठा करते थे (अब नया सभामंडप बन गया है) उस स्थान पर नए सभा मंडप में, संगमरमर की छोटी सी देहरी बनाई गई है: जिस पर श्रीहरि के चरण-चिह्न हैं । एक शिलालेख अंकित है, 'प्रसादी की पुरानी धर्मशाला में इस स्थान पर **अनादि मूल अक्षरमूर्ति** सद्‌गुरु श्री गुणातीतानंद स्वामी ने 40 वर्ष बैठकर कथावार्ता की थी।'

इसके अतिरिक्त सिंहासन के ठीक सामने जहाँ स्वामी बैठकर स्नान करते थे, उस स्थान पर, प्रदक्षिणा में संगमरमर की छत्री आदि पर, अनेक स्थानों में स्वामी को '**मूल अक्षर**' के रूप में लिखा है।

❀

सोरठ प्रदेश के विभिन्न तीर्थ स्थानों के प्रासादिक स्थलों पर जहाँ भी गुणातीतानंद स्वामी का उल्लेख है, वहाँ-वहाँ '**अनादि मूल अक्षर**' शब्द का उल्लेख भी अनिवार्य रूप से किया गया है।

सोरठ प्रदेश के राजकोट, गोंडल, जेतपुर, पीपलाणा, वंथली, पंचाला, धोराजी और उपलेटा आदि के मंदिर सभी वरताल गद्दी की देखभाल में थे। शिखरबद्ध मंदिरों या हरिमंदिरों में (छोटे मंदिर) सद्‌गुरु बालमुकुन्ददासजी,

52. गुणातीतानंद स्वामी द्वारा निर्मित महाप्रसादीभूत पुराना सभामंडप गिर जाने से वह मूर्ति फिलहाल रखी नहीं गई है।

सद्‌गुरु कृष्णचरणदासजी आदि ने अक्षरपुरुषोत्तम की पटमूर्तिओं (चित्र से किस विशेष घटना की उन्हें जानकारी मिली थी।

❀

शास्त्रीजी महाराज लिखते हैं, 'मैंने कोठारी गोरधनभाई से एकांत में पूछा, 'आप और कुछ अन्य लोग 'स्वामी अक्षर हैं' इसके विरुद्ध हैं, किन्तु रघुवीरजी महाराज तो स्वामी के पास समागम के लिए जाते रहते थे, वे स्वामी को अक्षर समझते थे कि नहीं?' कोठारी ने कहा था' 'प्रारंभ में स्पष्टता से नहीं कहते थे, किन्तु संवत् 1917 (सन् 1861) के वर्ष में जब वे जूनागढ़ से लौटे तब वे स्वामी रूप हो गए थे। '**स्वामी अक्षर हैं**' यह वह समझते थे। इतना मैं सौगंधपूर्वक कह सकता हूँ।'

पत्र के अंत में उन्होंने लिखा, '**व्यक्तिगत स्वार्थ को सिद्ध करने के लिए मुझे घटनाओं को तोड़ना-मरोड़ना नहीं आता।** इसके अतिरिक्त असत्य बड़ा पाप है। भागवत में लिखा है, '**नासत्यात् परं पापम्।**' पृथ्वी ने कहा है, 'मैं समस्त पापियों का भार वहन कर सकती हूँ। किन्तु असत्यवादी के भार को सहन नहीं कर सकती।' असत्य के प्रति मैं आग्रह करूँ, इसके लिए मेरे पास कोई कारण नहीं है। **यदि तुम वास्तव में मुझ पर विश्वास करते हो, और मुझे सच्चे और प्रामाणिक व्यक्ति के रूप में स्वीकार करते हो, तो उपर्युक्त बात को सत्य मानना और सच्चे अंतःकरण से 'स्वामी अनादि अक्षर हैं और श्रीहरि पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान हैं, ऐसी निष्ठा रखना।'**[53]

'गुणातीतानंद स्वामी अक्षर हैं' यह बात सत्य है अतः इस सिद्धान्त का प्रचार श्रीजीमहाराज की इच्छा से हुआ।

इस सिद्धांत के प्रवर्तन के पश्चात्, विरोधियों द्वारा 'सद्‌गुरु गोपालानंद स्वामी' अक्षर के अवतार हैं, ऐसी बात का सुनियोजित प्रचार[54] प्रारंभ हुआ।

---

53. देखें - 'स्वामिनारायण प्रकाश' (मासिक) फरवरी, 1998।

54. यह प्रवर्तन सद्‌गुरु गोपालानंद स्वामी के शिष्य गढ़डा के माना भगत ने शुरू किया था । स्वामीश्री शास्त्रीजी महाराज ने उन्हें कहा : 'आप यह शिक्षापत्री हाथ में लेकर कहिए कि गोपालानंद स्वामी अक्षर है।' तब वे घबराकर बोले, 'उस समय ऐसी कोई बात हुई नहीं थी।' (शास्त्रीजी महाराज के रेकॉर्ड किए गए प्रवचनों से)

कुछ मंदिरों में गोपालानंद स्वामी की मूर्ति के नीचे 'मूल अक्षरमूर्ति गोपालानंद स्वामी' लिखा गया। इसका अर्थ था कि अभी भी कुछ व्यक्ति गुणातीतानंद स्वामी को 'मूल अक्षर' नहीं मानते। किन्तु इसका एक अर्थ यह भी है कि अक्षर-पुरुषोत्तम उपासना का सिद्धांत सत्य है, मान्य है। 'महाराज की पूजा-भक्ति-उपासना उनके भक्त के साथ करनी चाहिए' इस सिद्धांत का स्वत: स्वीकार हो गया। अर्थात् शास्त्रीजी महाराज द्वारा प्रवर्तित सिद्धांत सत्य है।

'स्वामी अक्षर हैं' उनके जीवन और कार्य के आधार पर

गुणातीतानंद स्वामी का जीवन एवं कार्य अन्य परमहंसों एवं हरिभक्तों से कहीं अधिक उत्कृष्ट है। यह उनके जीवन की घटनाओं से स्पष्ट प्रमाणित होता है। आईए, कुछ घटनाओं का अवलोकन करें :

स्वामी अपने बाल्यकाल से ही श्रीहरि को निरंतर देखते थे । चार वर्ष की आयु में ही उन्होंने अपनी माता से कहा था, 'माँ, आज यज्ञोपवीत के गीत गाओ। छपैया में आज भगवान का यज्ञोपवीत संस्कार हो रहा है।' घनश्याम (भगवान स्वामिनारायण का बचपन का नाम) घर छोड़कर वन विचरण करने निकले, तब उन्होंने अपनी माँ से कहा, 'माँ, धाम के धामी आज वन-विचरण के लिए जा रहे हैं।'

❀

अपने समस्त जीवनकाल में स्वामी ने अपनी असाधारण शक्ति से अनेक विविध जीवों को असाध्य रोगों से मुक्ति दी है। अनेक को नवजीवन प्रदान किया। अनेक के महाकष्ट दूर किए हैं। अनेक को समाधि लगवाकर अक्षरधाम के दर्शन कराए हैं।

❀

माणसा गाँव के वालेरा वरु, लीलाखा गाँव के मुंजासुरू, कामरोल के दरबार दाजीभाई आदि अनेक पापी एवं आसुरी जीवन बितानेवालों का जीवन परिवर्तित करके स्वामी ने उन्हें सत्संगी बनाया था।

❀

स्वामी के आश्रित जो साधु थे, वे श्रीहरि द्वारा स्थापित धन-स्त्री की

मर्यादा का दृढ़ता से पालन करते थे । यहाँ तक कि उनके आश्रित गृहस्थ हरिभक्त भी पंचवर्तमान से युक्त, पंचविषय से अलिप्त आदर्श जीवन जीते थे। उनके भक्त ऐसे निष्ठावान थे कि सिर चाहे चला जाए पर सत्संग शुद्ध रहना चाहिए।

❀

स्वामी ने श्री रघुवीरजी महाराज तथा अनेक साधु-हरिभक्तों को यह अनुभूति करवा दी कि वे अक्षर हैं, इससे भी अधिक उन्हें ब्रह्मस्थिति में पहुँचाकर महाराज से जोड़ दिया। उनमें भगतजी महाराज, जागास्वामी, बालमुकुंददास स्वामी, योगेश्वरदास स्वामी, माधवप्रियदास स्वामी, माधवचरणदास स्वामी, कृष्णजी अदा, बोटाद नगर के शिवलाल सेठ, वसो गाँव के वाघजीभाई, वंथली गाँव के कल्याणभाई, गाँव बगसरा के वेला सथवारा, कमीगढ़ के रया देसाई, हामापर गाँव के करसन बांभनिया, चाड़िया गाँव के राम भंडेरी, उपलेटा शहर के लालाभाई और अरजनभाई आदि अनेक नाम गिने जा सकते हैं।

❀

स्वामी की बातों में स्वरूपनिष्ठा, पंचविषय का खंडन, माहात्म्य और शूरवीरता का जैसा बुलंद नाद है, वैसा दूसरे सद्‌गुरुओं की बातों में नहीं है। उन्होंने जहाँ-जहाँ सत्संग करवाया, वहाँ श्रीहरि की शुद्ध सर्वोपरि निष्ठा करवाई और दूसरे अवतारों, देव-देवियों, मंत्र-तंत्र, वहम के विषय में उचित दृष्टि देकर उनका प्रभाव निकाल दिया।

❀

'हरिलीलाकल्पतरु' जैसा विद्वत्तापूर्ण ग्रंथ रचने की प्रेरणा स्वामी ने दी। इस प्रकार सर्वोपरि निष्ठा और सत्संग के साहित्य की अभिवृद्धि की।

❀

जूनागढ़ मंदिर का प्रशासन इतना अधिक व्यवस्थित था कि स्वामी को कभी माँगकर धन एकत्रित करना नहीं पड़ा। उनका सिद्धांत था कि श्रीहरि में दृढ़ निष्ठा हो जाने के पश्चात् हरिभक्तों को दान देने के लिए कुछ कहने की आवश्यकता नहीं रहती। निष्ठा हो जाने पर वे श्रीहरि, स्वामी और मंदिर के लिए सर्वस्व अर्पण कर देते। स्वामी का ऐसा अद्‌भुत प्रताप था। इस

कारण से ही वे रघुवीरजी श्रीहरि से कह सके, 'महाराज! इस जूनागढ़ की खेंगार वाव (बावडी) यदि सोरठ के सत्संगियों के सिरों से भरनी हो तो भर दूँ, ऐसा सत्संग करवाया है।'

❀

मंदिर का विशाल प्रबंध चलाते, अंतहीन निर्माण कार्य को सम्भालते और अन्य प्रकार की प्रवृत्तियों के चलते रहने पर भी स्वामी की कथावार्ता में कभी रुकावट नहीं आई, वह तो निरंतर उत्साहपूर्वक चलती ही रही।

❀

ब्रह्म के अधूरे ज्ञान से मदमस्त हुए महेमदाबाद के विद्वानों का उन्होंने अपने ऐश्वर्य से पराभव किया।

❀

गुणातीतानंद स्वामी के विशिष्ट व्यक्तित्व में साधुता की पराकाष्ठा, श्रीहरि के लिए पराभक्ति, पंचवर्तमान की दृढ़ता, भगवान की आज्ञा का पालन करने की तत्परता, निष्ठा, नियम-धर्म में किसी प्रकार की ढील के बिना निडरता से सत्य बात कहना-स्पष्ट वक्तापन, मान-अपमान के अनेक प्रसंगों में स्थितप्रज्ञता-समत्वबुद्धि जैसे अनेक विशेष गुण थे।

❀

सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण तो यह है कि उनकी शिष्य परंपरा में ब्रह्मस्थिति आज तक चली आ रही है। अन्य किसी स्थान पर ऐसी अविचल शिष्य परंपरा देखने में नहीं आती।

उनके जीवन, कार्य एवं विचारों से स्पष्ट दिखाई देता है कि वे श्रीहरि के परम कृपापात्र, धामरूप, मूल अक्षर और उनके उत्तम अद्वितीय भक्त के रूप में वे सबसे अधिक प्रसिद्ध हुए थे, और उसी सत्य के कारण तथा जीवमात्र को ब्रह्मरूप होने के लिए भी मूल अक्षरब्रह्म गुणातीतानंद स्वामी का सत्संग अनिवार्य है।

हमारे सत्संग में सद्‌गुरु प्रतिदिन ब्रह्म और परब्रह्म की महिमा की यह धून बोलते हैं :

स्वामी अने नारायण,
स्वामी ते गुणातीत स्वामी,

नारायण सहजानंद स्वामी;

अक्षर अने पुरुषोत्तम,

अक्षर ते गुणातीत स्वामी,

पुरुषोत्तम सहजानंद स्वामी;

ब्रह्म अने परब्रह्म,

ब्रह्म ते गुणातीत स्वामी,

परब्रह्म सहजानंद स्वामी;

आत्मा अने परमात्मा,

आत्मा ते गुणातीत स्वामी,

परमात्मा सहजानंद स्वामी;

इस रीति से अपने जीव में अक्षर-पुरुषोत्तम की उपासना दृढ़ करके, इस उपासना के धारक प्रकट सत्पुरुष प्रकट ब्रह्मस्वरूप प्रमुखस्वामी महाराज के स्वरूप को पहचान कर, उनकी आज्ञा में रहने और उनसे जुड़ जाने से उपासना का यह ज्ञान सिद्ध होता है। समस्त मुमुक्षु अपने अंतर में इस ज्ञान को सिद्ध करके उसके विशेष प्रचार-प्रसार के लिए अपनी सेवा अर्पित करें, जिससे भगवान स्वामिनारायण की कृपा के पात्र बनें।

❖ ❖ ❖

उपसंहार

इस पुस्तक को पढ़ने के पश्चात्, पाठक को उपासना के संबंध में निम्नलिखित बातों का स्मरण रखना चाहिए :

उपासना में क्या समझना चाहिए

(1) जीव, ईश्वर, माया, ब्रह्म और परब्रह्म ये पाँच अनादि तत्त्व हैं।

(2) श्रीहरि पूर्ण पुरुषोत्तम नारायण परब्रह्म, सर्वोपरि, सर्व अवतारों के अवतारी, सर्वकारण, सर्वकर्ता, सदा साकार, सर्वज्ञ, प्रकट और दिव्य हैं।

(3) परब्रह्म पुरुषोत्तम नारायण एक और अद्वितीय हैं।

(4) श्रीहरि सदा ही अपने अक्षरधाम के मध्य सिंहासन पर विराजमान रहते हैं, अनंत कोटि मुक्त उनकी सेवा करते रहते हैं । अपने धाम में रहते हुए भी वे अनंत कोटि ब्रह्माण्डों में अभिव्यक्त (रूपधारण) हो सकते हैं। वे जो कुछ भी ग्रहण करते हैं, उसे अमायिक और निर्गुण कर देते हैं।

(5) धाम में जो परब्रह्म का स्वरूप है, वही इस पृथ्वी पर प्रकट हुए सर्वावतारी श्रीहरि हैं परंतु 'धाम में रहे तो अवतारी, और पृथ्वी पर प्रकट हुए तो अवतार' ऐसा नहीं समझना चाहिए । उनमें अवतार, अवतारी जैसा कोई भेद नहीं है। जो धाम में हैं, वही ये श्रीहरि हैं।

(6) पुरुषोत्तम की प्रेरणा और प्रवेश से ही अन्य अवतार होते हैं। वे भी पुरुषोत्तम की ही उपासना करते हैं। इस तरह अन्य अवतारों और सर्वावतारी पुरुषोत्तम नारायण के मध्य अवतार-अवतारी रूप स्पष्ट भेद है।

(7) पुरुषोत्तम नारायण की तरह ही अक्षरब्रह्म एक और अद्वितीय है।

(8) अक्षरब्रह्म एक ही है तो भी उसके दो स्वरूप हैं : एक तो निराकार,

एकरस चैतन्य (आकार रहित) है। उसे चिदाकाश कहा जाता है। अक्षर का दूसरा रूप पुरुषोत्तम नारायण की सेवा में, नित्य सेवक के रूप में रहता है।

(9) अक्षरब्रह्म भी अक्षरधाम में परब्रह्म की सेवा में रहते हुए ही परब्रह्म के साथ ही सेवक के रूप में अनंत कोटि ब्रह्माण्ड में रूप धारण कर सकते हैं। वे भी जो कुछ ग्रहण करते हैं, उसे अमायिक और निर्गुण कर देते हैं।

(10) पुरुषोत्तम की अन्वय-व्यतिरेकता और अक्षरब्रह्म की अन्वय व्यतिरेकता भिन्न-भिन्न हैं।

(11) सगुण और निर्गुणरूप तो पुरुषोत्तम का ऐश्वर्य है, अक्षरब्रह्म सगुण रूप में महान से भी महान और निर्गुण रूप में सूक्ष्म से भी सूक्ष्म है।

(12) हमारी उपासना अक्षर (स्वामी) रूप होकर पुरुषोत्तम (नारायण) की अर्थात् भक्त रूप होकर भगवान की भक्ति करना है। अक्षरब्रह्म परब्रह्म के अनादि सेवक और आदर्श भक्त हैं। वे परब्रह्म की भक्ति सेवक-भाव से करते हैं। उसी प्रकार से, हमें अक्षररूप होकर पुरुषोत्तम नारायण की ही उपासना और भक्ति करनी है। इस तरह हमारी उपासना हमेशा (पुरुषोत्तम के) दो चरण की ही है।

(13) मुक्ति अवस्था में जीवात्मा और ईश्वरात्मा, ब्रह्मरूप-मुक्त हो जाती हैं। मुक्त जीवात्मा और ईश्वरात्मा स्थूल शरीर को छोड़ देती है और भागवती तनु-दिव्यदेह धारण करती हैं, जिसे कि पुरुषोत्तम नारायण प्रदान करते हैं। उस रूप में वे मुक्त पुरुषोत्तम की सेवा-भक्ति करते हैं। जो ब्रह्मस्वरूप हो जाता है, वह पुरुषोत्तमरूप हो जाता है। दूसरे शब्दों में अक्षर मुक्त का रूप पुरुषोत्तम जैसा दिव्य हो जाता है। पुरुषोत्तम के कल्याणकारी गुण भी उसमें (मुक्त में) आ जाते हैं। परंतु मुक्त पुरुषोत्तम नहीं हो जाते। परब्रह्म की श्रेष्ठता, सर्वोपरिता हमेशा रहती है।

(14) अक्षरब्रह्म का साधर्म्य प्राप्त करनेवाले मुक्त अनंत हैं। परंतु अक्षरब्रह्म एक और अद्वितीय है। अक्षरब्रह्म अनंत को मुक्त कर सकता है, किन्तु सब मुक्त मिलकर भी अक्षरब्रह्म नहीं बना सकते। पुरुषोत्तम अक्षरब्रह्म

से परे है और अक्षरब्रह्म मुक्तों से परे है। इस तरह से मुक्त, अक्षर, पुरुषोत्तम क्रमशः उत्तरोत्तर परे और भिन्न हैं, और आत्यंतिक प्रलय के अंत में तीनों रहते हैं।

(15) इस लोक में से अंतर्धान होने के पश्चात् श्रीहरि हमेशा अक्षरब्रह्म द्वारा ही सम्यक् प्रकार से प्रकट रहते हैं। इस तरह से श्रीहरि अंतर्धान होने के पश्चात् गुणातीतानंद स्वामी के द्वारा प्रकट रहते हैं। उसी गुरुपरंपरा द्वारा श्रीहरि आज प्रकट ब्रह्मस्वरूप प्रमुखस्वामी महाराज द्वारा सम्यक् रूप से (पूर्ण रूप से) प्रकट हैं।

(16) ऐसे प्रकट ब्रह्मस्वरूप संत के संग से ही धर्म, ज्ञान, वैराग्य और माहात्म्य युक्त भक्ति सहित एकांतिक धर्म सिद्ध होता है। उनकी शरण में जाने से, उनमें मन, कर्म, वचन से अपना जीव जोड़ने से, उनकी आज्ञा और अनुवृत्ति में रहने से यह जीव ब्रह्मरूप हो जाता है, और पुरुषोत्तम की भक्ति का अधिकारी बन जाता है।

उपासना में क्या नहीं समझना चाहिए ?

(1) पुरुषोत्तम नारायण श्रीहरि विभिन्न अवतारों या आचार्यों या भक्तों के समान हैं, ऐसा नहीं समझना चाहिए।

(2) जब भगवान पृथ्वी पर अवतरित होते हैं, तब वे धाम में नहीं होते हैं (धाम खाली होता है), ऐसा नहीं समझना चाहिए।

(3) अकेले पुरुषोत्तम ही हैं, और अक्षर (अक्षरब्रह्म जैसा तत्त्व) नहीं हैं, ऐसा नहीं समझना चाहिए।

(4) अकेले अक्षरब्रह्म ही हैं। पुरुषोत्तम उनमें ही रहते हैं, और उनके द्वारा ही रह सकते हैं, ऐसा नहीं समझना चाहिए।

(5) मुक्तों की आत्मा अक्षरब्रह्म के साधर्म्य को प्राप्त नहीं करती, ऐसा नहीं समझना चाहिए।

(6) जीवात्मा और परब्रह्म पृथक्-पृथक् नहीं हैं (एक ही हैं), ऐसा नहीं समझना चाहिए।

(7) मुक्त और अक्षरब्रह्म पृथक् नहीं हैं (एक ही हैं), ऐसा नहीं समझना चाहिए।

(8) मुक्त और पुरुषोत्तम पृथक् नहीं हैं (एक ही हैं), ऐसा नहीं समझना चाहिए।

(9) अक्षरब्रह्म और परब्रह्म पृथक् नहीं हैं (एक ही हैं), ऐसा नहीं समझना चाहिए।

(10) अक्षरब्रह्म मूर्तिमान नहीं है, अक्षरब्रह्म केवल निराकार है, यह तो केवल धाम है, केवल दिव्य तेज है, ऐसा नहीं समझना चाहिए।

(11) श्रीहरि के जूते, वस्त्र, गुदड़ी, कमरा आदि वस्तुएँ 'मूल अक्षरब्रह्म' हैं, ऐसा नहीं समझना चाहिए। (श्रीहरि के उपयोग या संबंध की वस्तुओं को दिव्य कह सकते हैं, किन्तु उन्हें 'अक्षरब्रह्म' नहीं कह सकते।)

(12) सद्गुरु गुणातीतानंद स्वामी के अतिरिक्त अन्य परमहंसों को अनादि मूल अक्षरब्रह्म कह सकते हैं, ऐसा नहीं समझना चाहिए।

(13) प्रकट ब्रह्मस्वरूप संत के बिना केवल मूर्ति या शास्त्र के आश्रय से ब्रह्मरूप, एकांतिक बन सकते हैं, ऐसा नहीं समझना चाहिए।

(14) आज्ञा का पालन किए बिना, शिक्षापत्री का पालन किए बिना, अथवा उनकी अवहेलना करने से मोक्ष मिल सकता है, ऐसा नहीं समझना चाहिए।

(15) शिक्षापत्री और वचनामृत के शब्द देशकाल-बाधित हैं, वे हमेशा सर्वदेशी-सर्वग्राह्य नहीं हैं; इसलिए उनमें परिवर्तन किया जा सकता है, ऐसा नहीं समझना चाहिए।

(16) वचनामृतादि सत्शास्त्रों का रहस्य तथा भगवान का निश्चय[55] प्रकट ब्रह्मस्वरूप संत के सत्संग, उनकी कृपा के बिना स्वतंत्ररूप से समझा और समझाया जा सकता है, ऐसा नहीं समझना चाहिए।

❖ ❖ ❖

55. 'शास्त्रों में कहे निष्काम, निर्लोभ, निर्मान, निःस्वाद आदि संत के लक्षण जहाँ दिखे ऐसे संत का भगवान से साक्षात् संबंध होते है। अतः ऐसे संत के वचन में निश्चय करके उसमें दृढ़ विश्वास रखना ही भगवान का निश्चय कहलाता है।' (वच. ग. अं. 27)